श्री छिन्नमस्तायै नमः

50 वर्षों से प्रकाशित

कौल-कल्पतरु

चण्डी

श्री छिन्नमस्ता-पूजा-यन्त्र

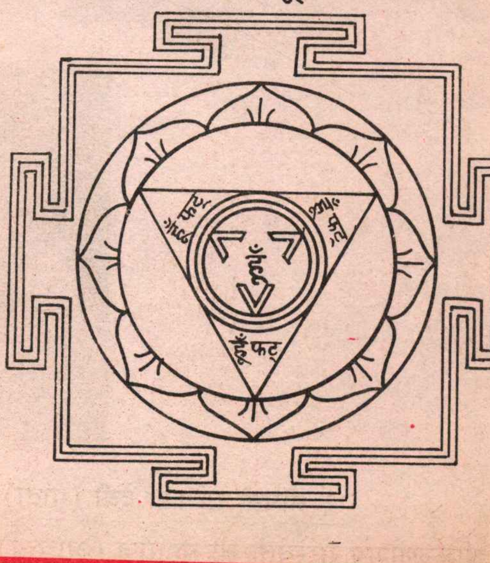

सिद्ध-पीठ रज-रप्पा स्मारिका

आचार्य-गण

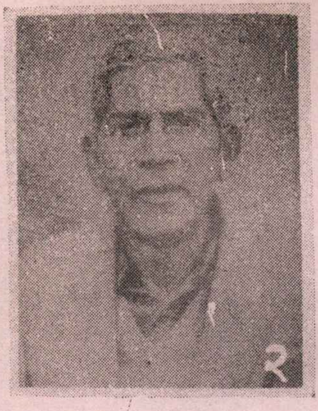

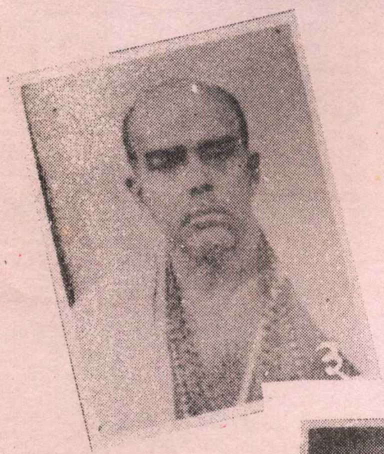

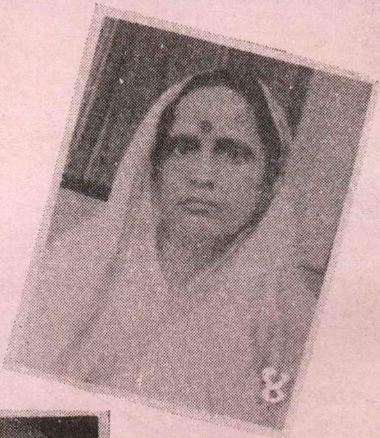

१ श्रीमती राधिका देवी (माता)   २ श्रीराधिका प्रसाद (पिता)

३ श्रीकरुणाशय सरस्वती जी महाराज (आचार्य)   ४ श्रीगुरु माँ   ५ श्रीसुकुमार वसु (गुरु-भाई)

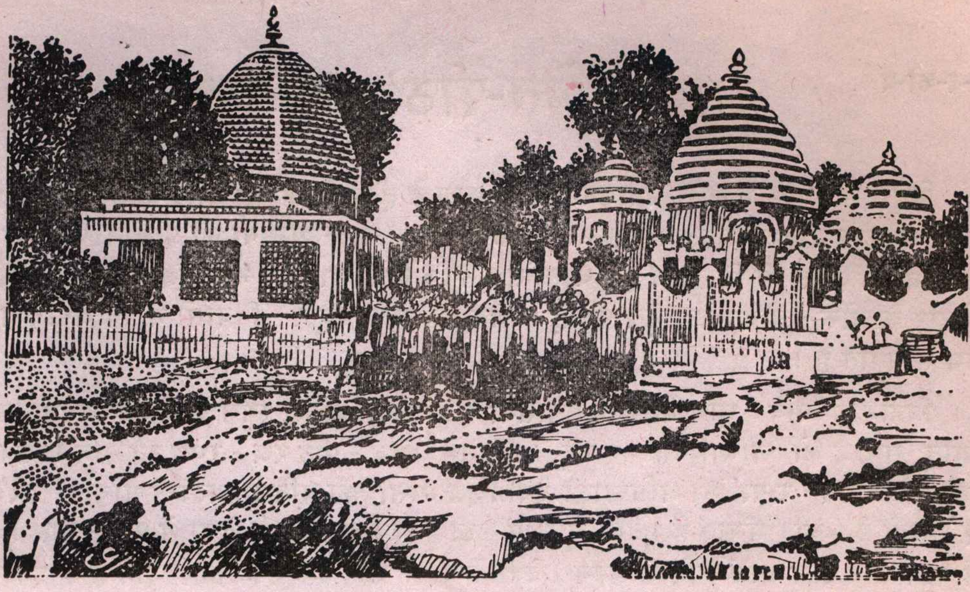

'सिद्ध-पीठ' रज-रप्पा स्मारिका

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

* *

पता
'चण्डी' कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग–२११००६
(उ० प्र०)

दूरभाष
६०६७८३

* *

वार्षिक शुल्क : रु० ५५
आजीवन शुल्क : रु० ५५०

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ५१] **[अङ्क ८**
कार्त्तिक, **'पार्थिव'** सम्वत्, २०४९ वि० : नवम्बर, १९९२

जय छिन्न-शिरा माँ

जय छिन्न - शिरा 'भव' - भाव धरा ।
परमेशि उतार स्व - शीस करा ।।
यह रूप अधार 'महा - गति' को ।
सब तत्त्व से भारत वा गति को ।।
यह एक प्रकृति गति वारण को ।
भुवि भाव बतावत धारण को ।।
छवि कारण हारण तारण है ।
जग 'मोती' सार सिखावन है ।।

स-म्पा-द-की-य

आदि-शक्ति-पीठ' रज-रप्पा

बिहार की भूमि में **शक्ति-उपासना** वैदिक-काल से ही नहीं, अपितु आदि-काल से होती आ रही है। बिहार के लोग अति प्राचीन-काल से **मातृ-भक्त** रहे हैं। **मातृ-उपासना** की प्राचीन परम्परा बिहार के लोक-जीवन में आज भी विद्यमान है। **वासन्तिक नव - रात्र, शारदीय नव-रात्र** एवं **षष्ठी देवी के पर्व** आज बिहार के लोक - जीवन के प्रमुख पर्व हैं। अब तो सभी बिहार - निवासी ये पर्व अपार श्रद्धा एवं धूम-धाम से मनाते हैं।

बिहार की पावन भूमि में **शक्ति-उपासना** के प्राचीन, प्रसिद्ध स्थल आज भी अपनी महिमा से आस्थावान् समाज को लाभान्वित कर रहे हैं। इनमें, **सिद्ध - पीठ रज - रप्पा** का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। **'रज - रप्पा'** की अधिष्ठात्री **देवी छिन्न-मस्ता** की प्रतिमा अत्यन्त प्राचीन, १५" लम्बी और ६" चौड़ी है। चार भुजाएँ हैं। बाँईं भुजा में कटा हुआ सिर, दूसरी भुजा में पान - पात्र। दाहिनी भुजा में गोलाकार ढाल और दूसरे में खड्ग। देवी के दोनों ओर एक-एक नारी-मूर्ति है। इन दोनों के दाहिने हाथ में खड्ग और बाँएँ हाथ में पान-पात्र है। इन्हें **'डाकिनी'** और **'वर्णिनी'** कहते हैं।

'रज-रप्पा' की **छिन्न-मस्ता** आदि-वासियों, सन्थालों, हिन्दुओं, निर्धन बन्धुओं, सम्पन्न बन्धुओं के द्वारा समान रूप से सम्पूजिता हैं। आदि-वासी इस पवित्र स्थान को आज भी अपना पुण्य-धाम समझते हैं और गया की तरह, यहीं पर अपने पितरों का पिण्ड-दान करते हैं। प्रकृति की विचित्र लीला का सुन्दर दृश्य यहाँ देखने को मिलता है। 'मन' को अनायास शान्ति, आनन्द, शुभ प्रेरणाओं की प्राप्ति होती है। इन सबके बीच **'नद'** के ऊपर **'नदी'** के विलास से विलक्षण भावों का सहज प्रस्फुरण होता है। 'छिन्न-मस्ता' की कृपा भक्तों को यहाँ सहज ही प्राप्त होती है।

'रज-रप्पा' मन्दिर के निर्माण के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि इसका निर्माण राजा सुरथ ने करवाया था। पुरा-तात्त्विक परीक्षणों से सिद्ध है कि यह मन्दिर-परिसर लगभग साठ हजार वर्ष प्राचीन है। तिब्बत की प्राचीन पाण्डुलिपि के अनुसार यह **'आदि-शक्ति-पीठ'** है। **श्रीछिन्न-मस्ता माँ की कृपा** से, आज यह मन्दिर-परिसर आधुनिक विकास से युक्त होकर, सर्व-साधारण के लिए सुलभ हो गया है।

अब हमारा पुनीत कर्तव्य है कि हम इस **स्थान को पवित्रता, प्रतिष्ठा** को बनाए रखने में अपना पूर्ण सहयोग दें। तभी अनुशासित रूप से व्यक्तिगत एवं सामूहिक पूजन तथा निष्ठा - युक्त धार्मिक एवं सांस्कृतिक अनुष्ठानों द्वारा, **माई की देन 'सिद्ध-पीठ' रज - रप्पा** से व्यक्तिगत जीवन/सामाजिक जीवन/राष्ट्रीय जीवन को जीवन्त प्रेरणा मिल सकेगी।

इसी उद्देश्य से **'चण्डी'** मासिक पत्रिका द्वारा प्रस्तुत **स्मारिका** प्रकाशित की जा रही है। साथ ही **साधना-शिविर** का आयोजन हो रहा है। यदि हमारे इस लघु प्रयास से, इस दिशा में थोड़ी भी सफलता प्राप्त हुई, तो हम अपने को कृत-कृत्य समझेंगे।

'सिद्ध-पीठ' रज-रप्पा

✻ पं० बलराम दुबे,
डी० आई० जी०/सी० बी० आई०
७ नवलकिशोर मार्ग, लखनऊ (उ० प्र०)

साधना की वादी में,
शिव-मय समाहित।
एकाकी नद 'दामोदर' का वक्ष,
उँडेलता हुआ जल रङ्गीन अविद्या का
नद के ऊपर नदी का कलश !
काम के वक्ष पर लेटी हुई रति,
नद के ऊपर उमड़ती हुई नदी !

मैंने देखा है 'भैरवी'-'दामोदर' के सङ्गम पर
रङ्ग-मय अविद्या और विद्या का विलय !
प्रगाढ़ आलिङ्गन में चिर-प्रेमी-युगल
न रिक्तता का बोध,
न भरने की चाहत।
ऐसे ही सङ्गम पर जग कर जगाती है,
निबिड़ अँधेरे में विद्या की ललक !
प्यासा है जगत्,
प्यासे हैं लोग, प्यासी है सृष्टि।
प्यासे हैं हम,
सिर्फ तू ही एक माता—
प्रचण्ड वज्र-तारे ! चिर-तृप्त छिन्न-मस्ते !
मिटाती हो प्यास, आकाश से उतर कर !!

तीन धाराओं में बहता हुआ रक्त,
मिटा रहा है वामा और दक्षिणा
धाराओं से निरन्तर—
प्यास योगिनियों की रजस और तमस्,
प्रवाहित कबन्ध से सतो-गुणी गङ्गा को—
पी रहा है प्रसन्न छिन्न-शीर्ष,
सुषुम्ना की मधुर मध्य-धारा को ।।

त्रिवेणी के सङ्गम पर,
साधकों की तृषा को—
मिटाती हो धार में,
बहाकर तू स्वयं को।
भुक्ति-मुक्ति-कामना को,
इडा और पिङ्गला से।
विरक्त आत्म-प्यास को,
अमिय-रस सुषुम्ना से ।।

मुण्ड-हीन अङ्ग-अङ्ग जीवित प्रफुल्लित से,
स्वयं-सिद्ध छिन्न-मुण्ड प्रमुदित प्रसन्न-चित्।
देह-बन्ध रुद्र-ग्रन्थि मुक्त कण्ठ मुक्त प्राण,
मुक्त साधना स्वच्छन्द शक्ति-बीज अंकुरित।
निकली हो फाड़ कवच-ढाल सख्त सम्पुट से,
ऊर्ज-शक्ति आणविक भट्ठियाँ अपरिमिते !
कौन तुझे देख सके, रोक सके, थाम सके—
शमन करो शक्ति स्वयं-सिद्ध छिन्न-मस्तिके !

समस्त मेरु-दण्डों एवं गोवर्धनों के साथ,
धँस जाएगी धरती।
रोक लो प्रचण्ड वेग वज्र-वैरोचनी !
थाम लो श्यामले ! सूर्य की ऊर्जा को,
कमल की पंखुड़ी पर।
उतरो जल-बिन्दु पर बिम्ब पार-दर्शी,
सजल झिलमिलाती हुई ।।

सुरक्षित था बीज जिस सम्पुट में,
फट गया कवच।
तुझे स्वयं ही बचना होगा।

बाहर निकलने की त्वरित तमन्ना है,
और मौसम प्रतिकूल !
धरा का वक्ष अभी सख्त है अंकुर !
तुझे स्वयं से जूझना होगा ।
पाँवों से गर्भ के बाहर का मार्ग—
तुझे स्वयं ही तलाशना होगा ।
समझ न लेना तुम बेरुखी मौसम की—
माता की, धरा के आवरण को,
गर्भाशयो हलचलों को
करुणा-मयी माता की—
कृपा-दृष्टि वर्षण तक ।
सहना ही पड़ेगा—
बोझिल संस्कारों के बीज-मय आवरण को !

तब ढीला पड़ जाएगा स्वतः,
धरा का सख्त गर्भाशय—
कि निकल सको बाहर,
तब तेरे ही रुख को देखकर—
बदलेगा मौसम !
यहाँ से नन्दन-कानन तक,
आँचलें फैलाकर चूमेगी हवा—
तुझे गोद में बिठाकर ।।

कुलिश-संस्कार हों अनन्त कोटि जन्मों के,
फटकर स्वतन्त्र मुक्त सम्पुट स्व-शक्ति-वीज ।
श्यामला दयार्द्र क्षीर-सिन्धु सफल साधना,
मङ्गल-मय अंकुर हों फल-दायो वृक्ष सिद्ध ।।

मस्तक-विहीन किया पर्ण-सा त्रिशूल से,
स्वभाव-उग्र रुद्र ने कुदृष्टि भाग्य-देव की ।
कृपा छिन्न-मस्तिका कि मुण्ड गज-गणेश हो,
साधना सु - मङ्गला प्रसन्नता गणेश की ।।

ओ अपर्ण-साधना सुधा-समाधि-वर्षणा
हम विहीन-ग्रीव एक यज्ञ जगत् शीर्ष-मय ।
उग्र-तम नृसिंह-रूप श्री समर्थ अश्व-ग्रीव,
सौम्य-तम गणेश-मूर्ति भाग्य ऋद्धि-सिद्धि-मय ।।

क्रोध-ज्वार शान्त हो प्रसिद्ध योग सिद्ध हो,
प्रसीद श्री गणेश, परशुराम-अम्ब रेणुके !
हर प्रकार हर समय सुरक्ष हमें अम्बिके,
उग्र-सौम्य, रौद्र-शान्त-रूप छिन्न-मस्तिके !!
ओ सम्पुट से निकली हुई,
बीज-शक्ति वज्रा ।
ज्वलित सूर्य-मण्डल की ऊर्जा वैरोचनी ।
निकलकर शब्द-सम्पुट से,
विमुक्त छिन्न-मस्ते !
व्याप्त हो जाती हो,
समष्टि की स्वतन्त्र इकाइयों में ।
मुक्त लहराती हुई,
सूर्य की ऊर्जा की तरह,
तो कभी आत्म-घाती—
सर्व-ग्रासी विघटित—प्रति-विघटित,
स्व-चालित एक भट्ठी से निकली हुई ऊर्जा,
आणविक विस्तार की लहर प्रलयङ्करी ।।

तुझे छुए तो कोई नग्न हाथों से,
देखे तो कोई नग्न नयनों से !
गुजरे तो मुक्त कोई पास से,
फिर भी मैं खिचा चला आता हूँ बाहर ।
सम्पुट की बीज-मयी सुरक्षा से,
मुझे आँचल से कवच में लपेट लो माँ !
सहारा दो ममता-मयी दृष्टि का,
कि जुड़ा रहूँ विद्या-मयी गङ्गा की धारा से ।।
अगर आत्म-घाती हैं,
तेरी तलाश में निकले हुए कदम,
तो बाँहों का सहारा दो,
उतरो तू आत्म-शक्ति प्राणों में—
धड़कनों में सुधा-मयी गङ्गा-सी ।
अनन्त की साधना में डूबने के पहले,
अपनी ही वादी में गहरा उतरता हुआ,
अपने ही नभ में विचरता हुआ,
देख सकूँ रुद्र-ग्रन्थि—
चक्र-सार तेरी ही आँखों से ।

तान्त्रिक घाट 'सिद्ध-पीठ' रज-रप्पा

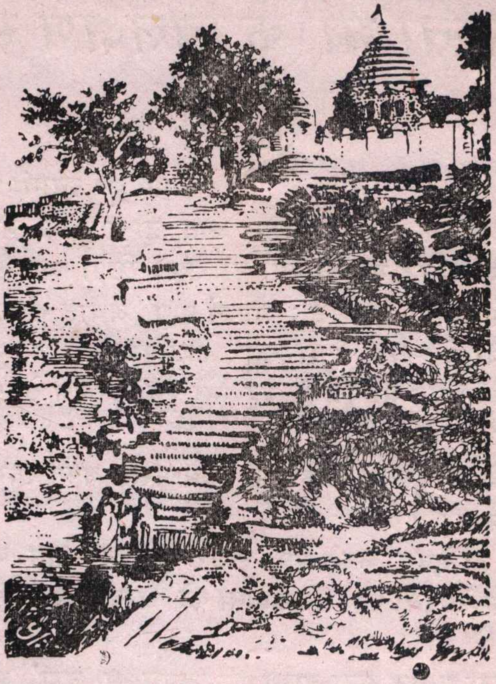

अपावन है मेरा प्रयास गर दुराग्रह तो,
क्षमा करो, नमन स्वीकार करो माँ !!
बाँई हथेली पर रखा हुआ मुण्ड तेरा,
स्वयं से कटा हुआ ।
जैसे परमात्मा हो,
सूक्ष्म एक तार से शून्य से जुटा हुआ ।
आत्म-रस-सरोवर सुषुम्ना में आकर भी,
तेरा ही प्यासा है ।

प्यासा है जगत्, प्यासे हैं हम,
तू ही बुझाती हो प्यास छिन्न-मस्ते !
समस्त सार-तत्त्वों के साथ,
ये धरती आकाश—
कर रहे तुम्हारा अभिनन्दन,
रोके हुए साँस, जाने कब से छिन्न-मस्ते !

बहा रहा हूँ अँजुरी भर पुष्प,
तरङ्गों की मुक्त प्रशंसा में—
कि उगें सङ्कल्प-मय बीज,
तुम्हारी प्रसन्न मुसकुराहट लिए ।
फूलों और फलों से लदे हुए वृक्ष,
तुम्हारी ही बन्दगी में झुके हुए ।

हर बरसाती नाले का उफान,
तुम्हारी वन्दना हो माता मुक्त-केशी !
हर जन्म लेनेवाले शब्द—
तुम्हारी आराधना,
जिनमें गर्भ में आए भूचाल से मुक्ति
एवं जाल में फँसी हुई मछली की—
अश्रु-मय विवशता है—माता आनन्द-मयी !
जय जय छिन्न-मस्ते ! ।।

छिन्न-मस्ता माँ के विलक्षण स्वरूप

का

मनन

* प० पू० स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती

छिन्न-मस्ता माँ के स्वरूप के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि माँ की इस विलक्षण मूर्त्ति—**'छिन्न-मस्ता'** में, वेदान्त के चारों प्रसिद्ध महा-वाक्यों का रहस्य छिपा हुआ है। यथा—

(१) वेदान्त का प्रसिद्ध महा-वाक्य है : **'प्रज्ञानं ब्रह्म'** अर्थात् सभी कुछ **'ब्रह्म'** है। इस महा-वाक्य के आधार पर, वेदों के 'शान्ति-पाठ' में बार-बार कहा गया है—'ॐ **पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते**।' अर्थात् यह भी पूर्ण है, वह भी पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण को ले लेने पर पूर्ण ही रहता है। पूर्ण के अतिरिक्त अपूर्ण कहीं नहीं है।

वेदों के महा-वाक्य के उपर्युक्त भाव को, माँ छिन्न-मस्ता अपने स्वरूप द्वारा प्रकाशित कर रही हैं। आप पूछ सकते हैं, किस प्रकार से ?

अपना मस्तक, स्वयं ही छेदन करके एवं रुधिर का स्वयं पान करके माँ यह दिखाती हैं कि अपूर्णता कहीं नहीं है, प्रमुख ज्ञानेन्द्रियों की पराधीनता को अस्वीकार करते हुए भी पूर्णत्व को प्राप्त किया जा सकता है।

(२) वेदान्त का दूसरा प्रसिद्ध महा-वाक्य है : **'अयमात्मा ब्रह्म'** अर्थात् स्व - आत्मा ही 'ब्रह्म' है। इस भाव को, माँ छिन्न-मस्ता अपने विलक्षण स्वरूप द्वारा इस प्रकार प्रकाशित कर रही हैं कि—**अपने दिव्य कलेवर के भीतर, जो 'आत्मा'—'रुधिर'-रूप में है, वह अन्तर्बहि अर्थात् अन्दर-बाहर सर्वत्र ही है, उसका हान अथवा उपादान (कम-ज्यादा) नहीं है।**

(३) वेदान्त का तीसरा महा-वाक्य है : **'तत्त्वमसि'** अर्थात् **तत्त्व ही ब्रह्म है।** 'देह' के धर्मों (रूप-नाम आदि) एवं 'मुण्ड' के धर्मों (पञ्च - ज्ञानेन्द्रियों की क्रियाएँ)—दोनों के त्याग के द्वारा छिन्न-मस्ता माँ, इस महा-वाक्य के भाव को ही प्रदर्शित कर रही हैं।

(४) वेदान्त का चौथा महा-वाक्य है : **'अहं ब्रह्मास्मि'** अर्थात् **मैं ब्रह्म हूँ।** इस महा - वाक्य के भाव को भी छिन्न-मस्ता माँ, अपने विलक्षण स्वरूप द्वारा प्रकाशित कर रही हैं। माँ के पद - तल में, विपरीत रतातुर रति - काम इसी के प्रतीक हैं। इस प्रतीक के द्वारा माँ ने विपरीत रिरंसा को सर्वतो-भाव से दलित किया है। **'विपरीत रिरंसा'** का अर्थ है, स्वरूप के जो विपरीत है, उसमें रमणेच्छा। खण्डित, अनात्म-पदार्थ में, जीव की रमणेच्छा होती है। यह जीव की विपरीत रमणेच्छा है। यह विपरीत रति दूर होती है, केवल इस निश्चय-बुद्धि से कि—**'मैं स्वरूपतः आनन्द-ब्रह्म हूँ। ब्रह्म से इतर कुछ नहीं हूँ।'** अतएव आत्मा को छोड़कर, रति कहीं नहीं होगी। यही **'अहं ब्रह्मास्मि'** का भी अर्थ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छिन्न-मस्ता के विलक्षण स्वरूप द्वारा वेदान्त के चारों महा-वाक्यों के भाव स्फुरित होते हैं। अतः माँ के विलक्षण स्वरूप का मनन करने से, वेदान्त के महा-वाक्यों के अनुरूप भाव-शरीर की प्राप्ति हो जाएगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

ब्रह्म-रूपिणी चित्-शक्ति

भगवती छिन्नमस्ता

प्रस्तुत-कर्ता : **'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल**

आगम ग्रन्थों के अनुसार **भगवती छिन्न-मस्ता का ध्यान** इस प्रकार है—

नाभि[1] में श्वेत-कमल[2] के भीतर बन्धूक-पुष्प की तरह लाल, जगमगाता हुआ सूर्य-मण्डल[3] है। उसके भीतर महा-योनि-चक्र[4] है। उसके बीच में विपरीत-मिथुन-कर्म में रत काम और रति[5] के विलक्षण पीठ पर करोड़ों मध्याह्न सूर्य की तरह जगमगाती हुई तेज-रूपा शिवा[6] विराजमान हैं ।।१

बाएँ हाथ में कटा हुआ शिर और दाहिने हाथ में बहुत बड़ा खड्ग[7] है। बायाँ पैर आगे बढ़ा है। दिगम्बरी[8] हैं। केश-समूह[9] खुले हुए हैं। परा-शक्ति, अपने ही कटे हुए शिरः - स्थान से निकलती हुई रक्त-धारा[10] पी रही हैं। बाल-सूर्य[11] की तरह प्रभा है। तीन नेत्र[12] शोभा पा रहे हैं ।।२

इनके दाहिनी ओर एक 'योगिनी' है, जो योनि-मुद्रा[13] है। यह देवी की अपनी ही शक्ति है। बड़े वेग से उठती हुई रक्त की धारा इसे ये पिला रही हैं[14]। हड्डियाँ[15] इस योगिनी के आभूषण हैं। इसके हाथ में चमकता हुआ भयङ्कर खड्ग[16] है। इसके वर्ण-केश और नेत्र लाल[17] हैं। यह विवस्त्रा अर्थात् वस्त्र-रहिता है। इसका नाम 'वर्णिनी' है ।।३

इनके बाँई ओर एक 'डाकिनी' है, जिसका नाम 'भोगिनी' है। यह देवी के हृदय के अत्यन्त निकट है। अपने ही सद्यः-छिन्न कण्ठ से निकलती हुई रक्त-धारा से इसे पुष्ट कर रही हैं। 'भोगिनी' दिगम्बरी है। इसके केश खुले हैं। यह प्रचण्ड है और प्रलय - कालीन घोर घटाटोप की तरह इसका (काला) रूप है। विकराल दाँतों के कारण इसके मुख और उदर - विवर कण्ठ की ओर देखा नहीं जाता। जिह्वा का अग्र-भाग लपलपा रहा है और इसकी दोनों आँखें बिजली की तरह चमकवाली तथा चञ्चल हैं ।।४

ब्रह्मा, ईशान, अच्युत आदि देवी के चरण-कमलों को शिर पर रखते हैं। आत्मज्ञ योगीन्द्र-गण अचिन्त्य-रूपा की पग-पग पर अहर्निश चिन्ता करते हैं। संसार - सार, त्रिभुवन - जननी, इष्ट-देवी, इष्ट देनेवाली, कलि कलुष हरनेवाली, तेजो-मयी (चिद्-रूपिणी) छिन्न-मस्ता का मैं ध्यान करता हूँ ।।५

उत्पत्ति, स्थिति और संहार की क्रिया के लिए आप तीन प्रकार के शरीर धारण करती हैं। जगत् के त्रिगुण के कारण, जिसके परिवर्तित रूप ब्रह्मा, विष्णु और शूल-पाणि हैं, सब विषयों की पूर्ण-सिद्धि के लिए, उस आद्या प्रकृति का मैं स्मरण करता हूँ, जिसके मुस्कराते हुए चरण-कमलों से देवताओं की अर्थ-सिद्धि होती है ।।६

उपर्युक्त ध्यान-तत्त्व से यह स्पष्ट है कि गुह्याति-गुह्या भगवती छिन्न - मस्ता साक्षात् ब्रह्म-रूपिणी चित्-शक्ति हैं। विशेष विवरण के लिए निम्न टिप्पणियाँ मननीय हैं—

१ नाभि—नाभि में श्वेत-कमल के भीतर तेजो-रूपा शिवा ने क्यों निवास किया है? वस्तुतः नाभि-प्रदेश चित् के महा-विस्तार में प्रथम स्पन्द या बिन्दु है। वेदों में इसे **'अमृतस्य नाभिः'** कहा गया

है। तन्त्रों में यह 'मणिपुर चक्र' के रूप में वर्णित है। सर्व - व्यापी चिद् - वस्तु का विस्तार शब्दात्मक कलेवर धारण करके ही हुआ है और सभी प्रकार की शब्दाभिव्यक्ति के मूल में जो नाद या प्रणवोच्चार है, वह विशेषतः 'नाभि-स्थान' को आश्रय करके ही हुआ करता है। तन्त्रों के अनुसार यह 'पश्यन्ती'-वाक् है। अतः नाभि में निवास से शब्द-ब्रह्मात्मिका शक्ति का प्रतिपादन होता है।

२ **श्वेत-कमल**—श्वेत-कमल विश्व-प्रपञ्च का प्रतीक है। श्वेत अर्थात् विशुद्ध तत्त्व के भीतर भगवती शिवा स्थित हैं।

३ **लाल सूर्य-मण्डल**—सूर्य सृष्टि का प्रतीक है और लाल रङ्ग 'विमर्श' का द्योतक है। 'विमर्श' ही साकार विश्व का आरम्भ है।

४ **महा-योनि-चक्र**—यह चक्र त्रि-शक्ति (इच्छा, क्रिया और ज्ञान) और त्रि - गुण (सत्त्व, रज और तम) का द्योतक है।

५ **काम और रति**—ये चिदानन्द की आनन्द-वृत्ति के स्थूल रूप हैं सृष्टि-क्रिया के प्रवर्तक हैं।

६ **शिवा**—भगवती ही सृष्टि की महारम्भ-स्वरूपा हैं अर्थात् साक्षात् ब्रह्म-रूपिणी हैं।

७ **शिर और खड्ग**—कटे हुए शिर के सम्बन्ध में ऊपर विवेचन हो चुका है। 'खड्ग' से यहाँ ज्ञान-खड्ग से तात्पर्य है। इस ज्ञान-खड्ग से ही भगवती अपने अखण्ड स्वरूप को परिच्छिन्न वस्तु-रूप में खण्ड-खण्ड करती हैं।

८ **दिगम्बरी**—स्थिति-शक्ति 'दिक्' ही भगवती के वस्त्र हैं।

६ **खुले हुए केश-समूह**—अर्थात् प्रकृति ही भगवती का शृङ्गार है।

१० **स्व-रक्त-पान**—सृष्टि-क्रिया में, साकार-रूप में, महा-शक्ति अपना अवलम्बन स्वयं हैं।

११ **लाल-सूर्य की प्रभा**—विमर्श की द्योतक।

१२ **त्रि-नयना**—चन्द्र, सूर्य और अग्नि तथा इच्छा, क्रिया और ज्ञान के बोधक तीन नेत्र हैं।

१३ **योनि-मुद्रा**—निष्क्रिय एवं सक्रिय चित्-शक्ति के बीच का बिन्दु-स्थान ही 'योनि-मुद्रा' है। इसका स्थान भ्रू-मध्य है। यह मोक्ष को देनेवाली अन्तर्मुखी वृत्ति है।

१४ **दोनों योगिनियाँ**—विद्या और अविद्या की प्रतीक हैं। इन दोनों योगिनियों को भगवती अपना रक्त पिला रही हैं। इससे सिद्ध है कि 'विद्या' और 'अविद्या' भगवती की ही शक्ति से अनुप्राणित हैं। दूसरे शब्दों में ये दोनों योगिनियाँ क्रमशः मोक्ष-स्वरूपा 'अन्तर्मुखी' वृत्ति की द्योतक हैं। 'डाकिनी' भोग-स्वरूपा बहिर्मुखी वृत्ति है, जो अज्ञान एवं तमोगुण का परिणाम है। फिर भी प्रपञ्च-क्रिया में सहायक होने के कारण भगवती की ही शक्ति से अनुप्राणित है। इसकी चमकती आँखें और लाल जिह्वा भोग-तृष्णा का लपलपाता हुआ स्वरूप है।

१५ **अस्थि**—हड्डी ही प्राणियों के शरीर का अवलम्बन है। सभी रूपों को प्राण-रूप से वर्तमान रहकर स्थिर रखती है। इसी से भगवती की अस्थि-भूषा है।

१६ **भयङ्कर खड्ग**—ज्ञान का द्योतक है।

१७ **वर्ण, केश और नेत्र**—लाल हैं। यह इस बात का द्योतक है कि डाकिनी योगिनी (भोग-स्वरूपा बहिर्मुखी वृत्ति) रजो-गुण-स्वरूपा है।

सिद्ध-क्षेत्र-**'रज-रप्पा'** का संक्षिप्त परिचय—

श्री छिन्नमस्ता पीठ : 'रज-रप्पा'

—पण्डित सतीशकुमार उपाध्याय

'चण्डी'-कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

पवित्र नदी **'भैरवी'** (मुण्डा) तथा भैरव-स्वरूप नद **'दामोदर'** के विपरीत-रत सङ्गम पर षष्ठी महा-विद्या **'भगवती श्री छिन्न-मस्ता'** का पीठ स्थित है। यह स्थान **'रज-रप्पा'** या **'राज - रप्पा'** के नाम से विख्यात है। भगवती का यह स्थान न तो **'सिद्ध - पीठों'** के अन्तर्गत आता है, न ही **'शक्ति - पीठों'** के अन्तर्गत, परन्तु इतना तो निश्चित ही है कि साधकों की तपश्चर्या से प्रसन्न होकर 'माँ' ने इस स्थान को **'सिद्ध-क्षेत्र'** बना दिया है।

इस प्राकृतिक सुरम्य स्थान पर आप बस, टैक्सी, रेल या हवाई जहाज से पहुँच सकते हैं। रेल द्वारा यहाँ पहुँचने हेतु आपको **'दक्षिण-पूर्व रेलवे'** के रेलवे स्टेशन **'रामगढ़ कैण्ट'** तक की यात्रा करनी पड़ेगी। 'रामगढ़ कैण्ट' से बस स्टेशन २ कि० मी० दूर है। वहाँ 'बस' या 'टैक्सी' दोनों उपलब्ध हैं। बस १५ कि. मी. **'छतरपुर'** तथा छतरपुर से ११ कि. मी. **'सेण्ट्रल कोल फील्ड'** होते हुए **'रज - रप्पा'** पहुँचती है।

बस या टैक्सी से **'रज-रप्पा'** पहुँचने के लिए आपको **'हजारीबाग, बोकारो या राँची'** से यात्रा करनी पड़ेगी। **'राज - रप्पा' बोकारो** से ४० कि. मी. पश्चिम स्थित है। **'हजारीबाग'** तथा **'राँची'** से आपको **'रामगढ़ कैण्ट'** पहुँचना पड़ेगा। **'रामगढ़ कैण्ट'** 'पटना - राँची राज - मार्ग' पर **'राँची'** से ४५ कि. मी. पहले तथा **'हजारीबाग'** से ६५ कि. मी. पश्चात् पड़ता है।

'हवाई जहाज' से यात्रा करने हेतु आपको **'राँची'** का टिकट खरीदना पड़ेगा। **'राँची हवाई अड्डा'** देश के प्रमुख हवाई अड्डों से जुड़ा हुआ है। वहाँ से आपको 'टैक्सी' या 'बस' द्वारा **'रामगढ़ कैण्ट'** होते हुए **'रज-रप्पा'** की यात्रा करनी पड़ेगी।

सिद्ध-क्षेत्र **'रज-रप्पा'** की प्राचीनता, नाम-करण

'प्रचण्ड-चण्डिका' के इस पीठ का नाम जन-श्रुति के अनुसार **'राज - तपा'** था क्योंकि यहाँ के स्थानीय लोगों के विश्वास के अनुसार 'सुरथ' एवं 'समाधि' की तपः - स्थली यहीं रही है। अतः राजा सुरथ के तप करने से **'राज-तपा'** नाम पड़ा।

'राज - रप्पा' नाम पड़ने की भी एक कथा यहाँ प्रचलित है। पूर्व - काल में यहाँ केवल एक मन्दिर था, जिसमें कोई विग्रह नहीं था। आदि-वासी **'सन्थाल'** लोग यहाँ भगवती की आराधना किया करते थे। कालान्तर में बङ्गाल, बिहार एवं उड़ीसा के नवाब 'मुर्शिदा कुली खाँ' के अधीनस्थ राजपुर (आडियादह) राज्य के **'राजा रुद्रनारायण घोषाल'** पद-च्युत होकर इस स्थान पर पहुँचे तथा **'भगवती छिन्न-मस्ता'** के विग्रह का स्वतः उद्भव हो गया। इस चमत्कार से प्रभावित होकर तत्कालीन सन्थाल-सरदार मँगरू, जिसका व्यवसाय डकैती डालना था, सदल-बल उनका शिष्य हो गया। एक बार राजा

ने मँगरू को डकैती डालने से मना किया, परन्तु मँगरू ने उनकी बात नहीं मानी। परिणाम - स्वरूप उसके पुत्र झगड़ू को सर्प ने काट लिया और वह मर गया। भय-भीत होकर मँगरू अपनी पत्नी फूलमती के साथ राजा के पास पहुँचा तथा क्षमा-याचना करते हुए उनसे अपने पुत्र को जीवित करने का प्रबल अनुरोध किया। **'राजा रुद्रनारायण'** उसके पुत्र के शव को लेकर मन्दिर में चले गए तथा उसके एकमात्र फाटक को बन्द कर लिया। उन्होंने अपनी शेष आयु झगड़ू को दे दी तथा अपने शरीर को माँ के चरणों के नीचे पाषाण-रूप में परिणत कर दिया। तभी से इसे **'राजा - रोपाय गया'** (स्थापित या रोपित) कहने लगे। आदि-वासी इस मन्दिर का फाटक भी तब से बन्द नहीं करने देते थे। इधर पाँच - छः वर्षों से फाटक पुनः बन्द होने लगा है।

इस स्थान के नामकरण की तीसरी व्याख्या **'रज-रूपा'** के रूप में भी हो सकती है। शब्द-कोष के अनुसार **'रज'** का अर्थ है—मासिक धर्म, ऋतु, कुसुम, आर्तव, आकाश, प्रकाश, ज्योति एवं सूर्य-किरणों में फैले कण। तीन गुणों में से **'रज'** द्वितीय गुण है, जो सम्पूर्ण विश्व की क्रिया - शीलता का कारण है। **'रूपा'** का अर्थ **'रूप'** या **'ऊर्ध्व-मुखी गति'** है। **'रज'** का रङ्ग रक्त - वर्ण है। अतः भगवती **'वज्र-वैरोचनी'** एवं उनकी सखियाँ **'वर्णिनी'** एवं **'डाकिनी'** भी **'रक्त-वर्णा'** या **'रजो-गुण'**—रूपा हैं। ये संसार की समस्त क्रिया-शीलता को ऊर्ध्व गति देने में सक्षम हैं, जो ब्रह्म-स्वरूप प्राप्त करने में सहायक है। यही कारण है कि कालान्तर में **'रज - रूपा'** के अपभ्रंश के रूप में **'रज - रप्पा'** हो गया। आज भी भगवती को **'काश-रूप'** ही मानते हैं।

सांसारिक विषयों से विरक्ति-प्राप्ति का स्थान—'रज-रप्पा'

इस पीठ पर पहुँचते ही मन सांसारिक विषयों से विरक्त हो जाता है। यही कारण है कि माँ के इस विग्रह की उपासना से पाप विनष्ट हो जाते हैं, सुख की प्राप्ति होती है तथा शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त होता है।

'हजारीबाग गजेटियर' में यह स्थान **'मठ'** के नाम से उल्लिखित है। सम्भवतः **'सुन्दर - वन डेल्टा'** के **'अघोर साधकों'** तथा **'आनन्द-मठ'** के क्रान्तिकारियों का यह स्थान एक प्रमुख केन्द्र रहा हो, जहाँ से **'वन्दे मातरम्'** का उद्‌घोष हुआ होगा। यहाँ शङ्कर - स्वरूप जगद्‌गुरु आदि - शङ्कराचार्य ने भी तीन दिनों तक प्रवास किया। इस बात का उल्लेख **'चैतन्य महा-प्रभु'** ने वृन्दावन को प्रस्थान करते समय इस स्थान पर किया था।

आधुनिक विकास को प्राप्त प्राचीन 'रज-रप्पा' का परिचय

पिछले दो दशकों में **'कुमुद-प्रीता ट्रस्ट'** के सत्प्रयासों से इस स्थान का अभूतपूर्व विकास हुआ है। **'ट्रस्ट'** एक निजी **'न्यास'** है। इसके ट्रस्टी श्री विपिनविहारी शरण ने भगवती की कृपा एवं आज्ञा से यहाँ **'दश महा-विद्यात्मक सिद्ध-पीठम्'** की स्थापना करने का श्रेय प्राप्त किया है। इस विकास का पूर्वाभास इनके ज्येष्ठ गुरु - भाई **श्री शिवकुमार घोष** को, जो शरण जी के क्रियात्मक गुरु भी हैं, हो गया था, परन्तु उनके कथन को शरण जी, आजमगढ़-वासी पलटू सरदार तथा अन्य भक्त - गण हास्य के रूप में लेते थे।

'कुमुद-प्रीता ट्रस्ट' के द्वारा यहाँ निम्न मन्दिरों का निर्माण कराया जा चुका है। इनके स्थापना-दिवस भी यहाँ अङ्कित हैं—

१. श्रीकाली-मन्दिर, पञ्च-वटी, पञ्च-मुण्डी आसन तथा श्रीकाल-भैरव—दिनाङ्क ५-२-७६ ।

२. श्री अष्ट-मन्दिर (तारा, षोडशी, बगला, मातङ्गी, भैरवी, भुवनेश्वरी, कमला तथा धूमावती)—आषाढ़ शुक्ला तृतीया, सं० २०३९, दिनाङ्क २४-६-८२ ।

३. श्री सूर्य-नारायण मन्दिर, श्री वटुक-भैरव मन्दिर एवं श्री गणेश - मन्दिर—अक्षय - तृतीया, सं० २०४१, दिनाङ्क ४ मई, १९८४ ।

४. श्री सङ्कट-मोचन मन्दिर—कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी, सं० २०४०, दिनाङ्क ९-११-८३ ।

५. श्रीकृष्ण-मन्दिर, श्री मधुमती माँ, श्री मनसा माँ तथा श्री नव-ग्रह मन्दिर—१२-७-९१ ।

इनके अतिरिक्त **'विश्व - रूप श्रीकृष्ण'** एवं **'विश्व - रूपा श्री जगदम्बा'** के मन्दिरों का निर्माण किया जा रहा है । **'ट्रस्ट'** की ओर से सशुल्क साधकावास, सरोवर, यज्ञ-मण्डप भी बनवाए गए हैं । यहाँ बिड़ला का भी साधकावास है । भगवती के लिए उद्यान भी लगाया गया है ।

मन्दिर का निर्माण १० फीट × १० फीट के **'अष्ट - कोण'** - रूप में हुआ है । सभी विग्रह पूर्ण-रूपेण शास्त्रीय ध्यान के आधार पर निर्मित हैं । **'भगवती छिन्न-मस्ता'** का विग्रह रक्त पाषाण से निर्मित है, जिस पर ताम्र में भगवती का विग्रह उत्कीर्ण है । प्राण - प्रतिष्ठा-युक्त **'भगवान् सूर्य'** का त्रि-आयामी विग्रह यहीं पर है । भगवान् सूर्य का सम्बन्ध 'गायत्री' से है, जो द्विजत्व देती हैं । शूद्रत्व अज्ञानता का परिचायक है । अतः यहीं **'भगवती गायत्री'** का भी विग्रह है । देव - कार्य का लेखा - जोखा रखनेवाले विवेक-बुद्धि-स्वरूप **'चित्रगुप्त जी'** का भी विग्रह यहीं पर है ।

'भगवती छिन्न-मस्ता' की पूजा-अर्चा की व्यवस्था बङ्गाली ब्राह्मणों के हाथ में है, जो नदिया-जनपद के निवासी हैं । ये **'रुद्रनारायण घोषाल'** के वंशज हैं । यहाँ से बीस मील की दूरी पर **'हँसपोड़ा'** ग्राम में रहते हैं । ये ब्राह्मण सभी दर्शनार्थियों को सङ्कल्प-सहित पूजा - अर्चा कराते हैं तथा बलि-प्रदान कराते हैं । अन्य मन्दिरों में पूजादि का कार्य **'कुमुद-प्रीता ट्रस्ट'** द्वारा नियुक्त ब्राह्मण-पुजारियों के द्वारा किया जाता है । यहाँ सभी को पूजा का अधिकार प्राप्त है ।

इस स्थान पर दर्शन-क्रम निम्न प्रकार है—सर्व-प्रथम साधक **'नद'** या **'नदी'** में स्नान करके भगवती छिन्न-मस्ता का दर्शन एवं पूजन करे । तत्पश्चात् भगवान् सूर्य, महा-काल भैरव, भगवती काली, अष्ट-मन्दिर, हनुमान जी, राधा-कृष्ण मन्दिर, विश्व-रूप श्रीकृष्ण तथा विश्व - रूपा भगवती का दर्शन करे । यह स्थान सिद्ध-बलि-क्षेत्र है । अतः बलि अनिवार्य है । यहाँ नारियल, नींबू या छाग की बलि दी जाती है । यहाँ पर लोहे की चूड़ी, लाची दाना और सिन्दूर **'प्रसाद-रूप'** में प्राप्त होता है ।

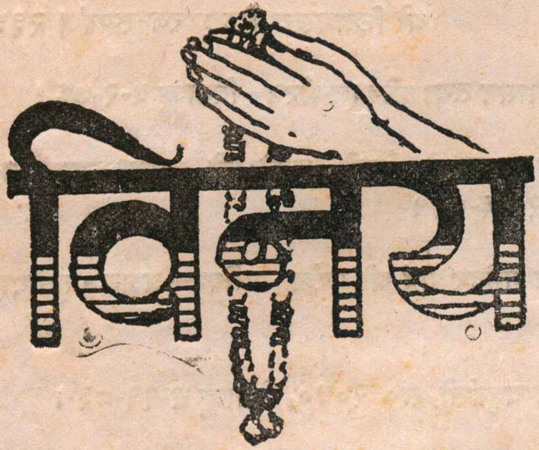

पण्डित बलराम दुबे
डी० आई० जी०, सी० बी० आई०,
७ नवलकिशोर मार्ग, लखनऊ (उ० प्र०)

वृहद सुपुष्ट मर्द के प्रशस्त निम्न वक्ष पे,
गिरे सवेग धार में नदी - प्रवाह ऊर्ध्व से ।
विदग्ध स्याह कामिनी प्रगाढ़ काम - ज्वार से,
प्रसीद सिद्ध-पीठ की निवासिनी ! नमस्तु ते ।
प्रसीद छिन्न-मस्तिके ! नमस्तु ते, नमस्तु ते ।।
रुके न भूख - प्यास माँ ! प्रवेग पञ्च-भूत के,
विक्षुब्ध योगिनी जया प्रवाह थाम ना सके ।
समस्त कण्ठ की तृषा - पयोधि तू मिटा सके,
कहें जया मिटे न क्यों तृषादि छिन्न-मस्तिके !।।
नमन तुझे, नमन तुझे, नमन प्रचण्ड-चण्डिके !।।
स्वमेव काट मुण्ड को खड़ीं स्व - वाम हस्त ले,
विशाल खड्ग दाहिने सु-हस्त रक्त-सिक्त ले ।
बही त्रि-धार रक्त की विछिन्न रुण्ड कण्ठ से,
कहें मिटा जयादि से, क्षुधा - तृषादि रक्त से,
नमन तुझे, नमन तुझे, नमन प्रचण्ड-चण्डिके !।।
अतृप्त प्यास योगिनी - सहेलियाँ मिटा सकें,
कहें पराऽम्बिके मिटा जयादि प्यास रक्त से ।
स्वयं स्व-गङ्ग पी रहीं, पिला रहीं कबन्ध से,
बहा रहीं स्व-रक्त माँ विरक्त छिन्न-मस्तिके !
नमन तुझे, नमन तुझे, नमन प्रचण्ड-चण्डिके !।।
लिए स्व-मुण्ड हस्त में गले विमुण्ड - मालिके,
फणीन्द्र - हार - भूषिते दिगम्बरे पराऽम्बिके !
विहारिणी स्वतन्त्र दिग्-दिगन्त मुक्त-केशिनी,
हरें प्रवेग काम-क्रोध-मोह-दम्भ अम्बिके !।।
नमन तुझे, नमन तुझे, नमन प्रचण्ड-चण्डिके !।।

त्रिधार गङ्ग श्यामला दिनेश - नन्दिनी मिलें,
सरस्वती विलुप्त से स्व-देह-सिद्ध-तीर्थ में ।
न सङ्ग की सहेलियाँ कहीं अतृप्त रह सकें,
बहें स्वयं सुधा-प्रदा स्व-धार भक्त-वत्सले !
नमन तुझे, नमन तुझे, नमन प्रचण्ड-चण्डिके !।।
स्व - पञ्च - भूत - भाव को दबा प्रवाह पाँव से,
कि प्राण-वायु ऊर्ध्व में सहस्र - धार में उठे ।
विदेह देह - भाव से उठे विशुद्ध - चक्र से,
रहस्य-चक्र गुह्य - तम खुलें, करें नमन तुझे ।
नमन तुझे, नमन तुझे, नमन प्रचण्ड-चण्डिके !।।
विशुद्ध - चक्र - तत्त्व को स्वमेव कण्ठ काट के,
स्व-देह रुद्र-ग्रन्थि को दिखा रहीं पराऽम्बिके !
रहे विछिन्न मुण्ड भी स्वच्छन्द प्राण-वन्त रे,
स्वयं उसे पिला रहीं स्व-गङ्ग-धार अम्बिके ।।
नमन तुझे, नमन तुझे, नमन प्रचण्ड-चण्डिके !।।
स्व-देह-बोध-भेद जो विदेह - भाव - शून्य वे,
चलें अनन्त मार्ग में रहस्य - चक्र पा सकें ।
स्व-देह-भौतिकी तृषा इडा व पिङ्गला हरें,
हरे स्व-प्राण प्यास को सुषुम्ना छिन्न-मस्तके !
नमन तुझे, नमन तुझे, नमन प्रचण्ड-चण्डिके !।।
करो कृपा, झरे सुधा अनन्त प्यार - धार में,
बहे कि मेघ दम्भ भी सु - गङ्ग में नहा सकें ।
शरीर - भाव भौतिकी जगा - जगा बुझा सकें,
मिटा स्व-आत्म-ज्ञान की तृषा कृपा-पयोधि रे ।
प्रसीद छिन्न-मस्तिके, प्रसीद छिन्न-मस्तिके !।।

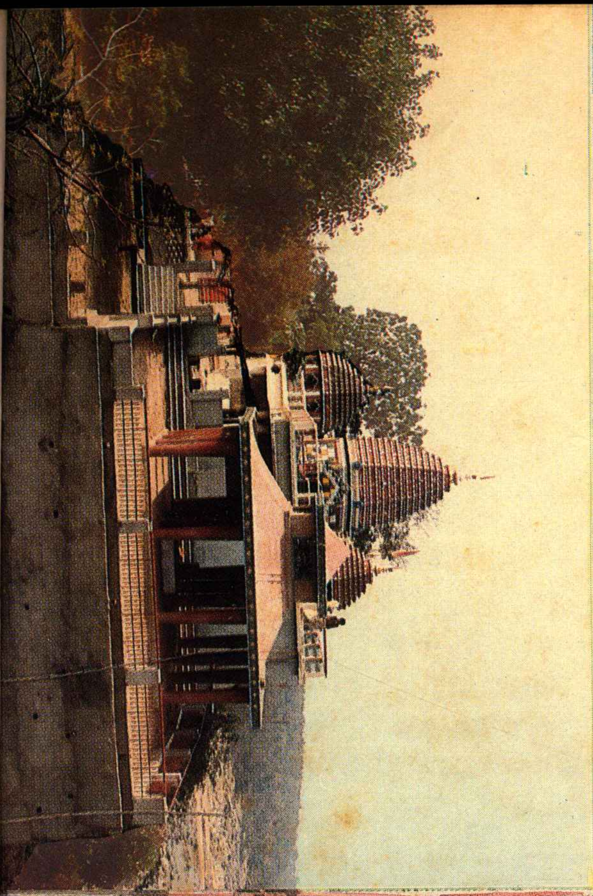

श्रीसूर्य भगवान्, रज-रप्पा

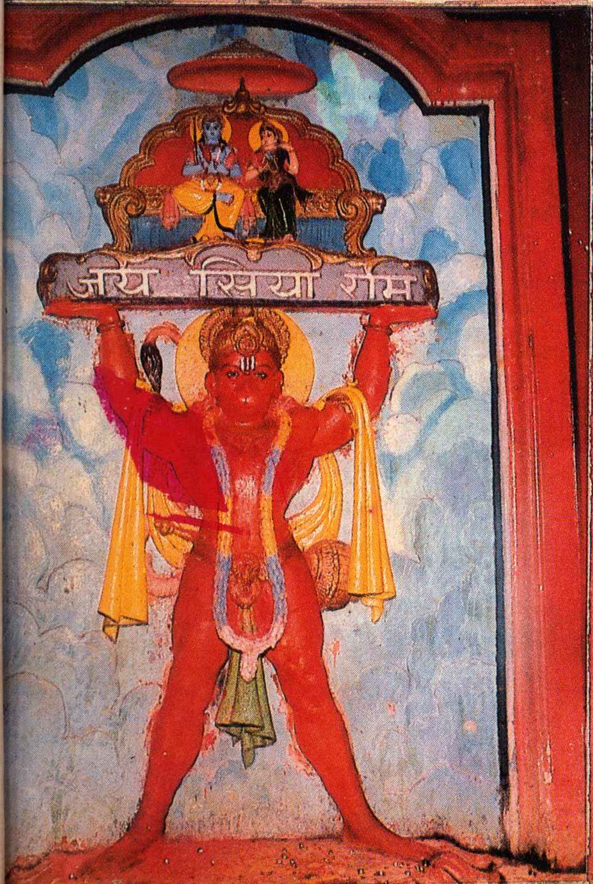

श्रीमहावीर, रज-रप्पा

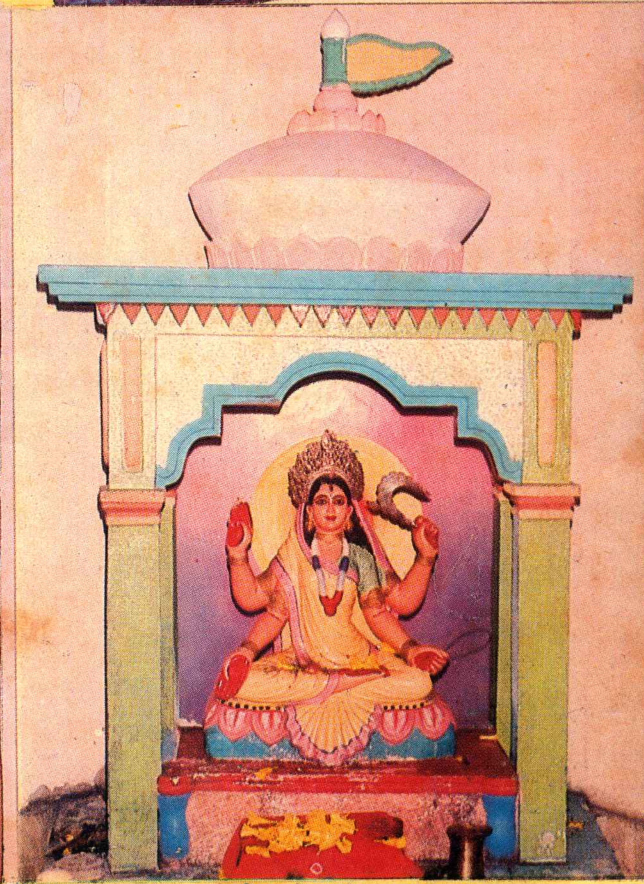

श्रीभुवनेश्वरी, रज-रप्पा

श्रीतारा, रज-रप्पा

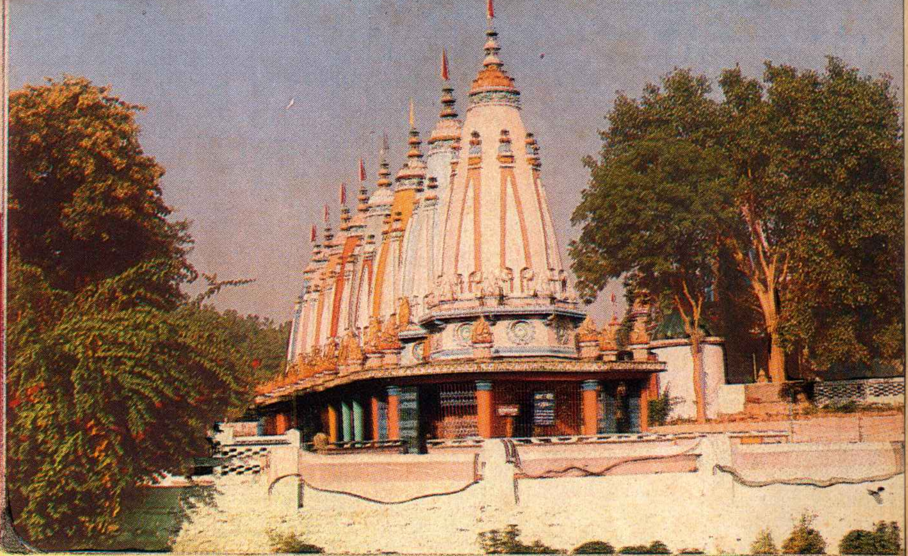
अष्ट माँ मन्दिर, रज-रप्पा

श्रीषोड़शी, रज-रप्पा

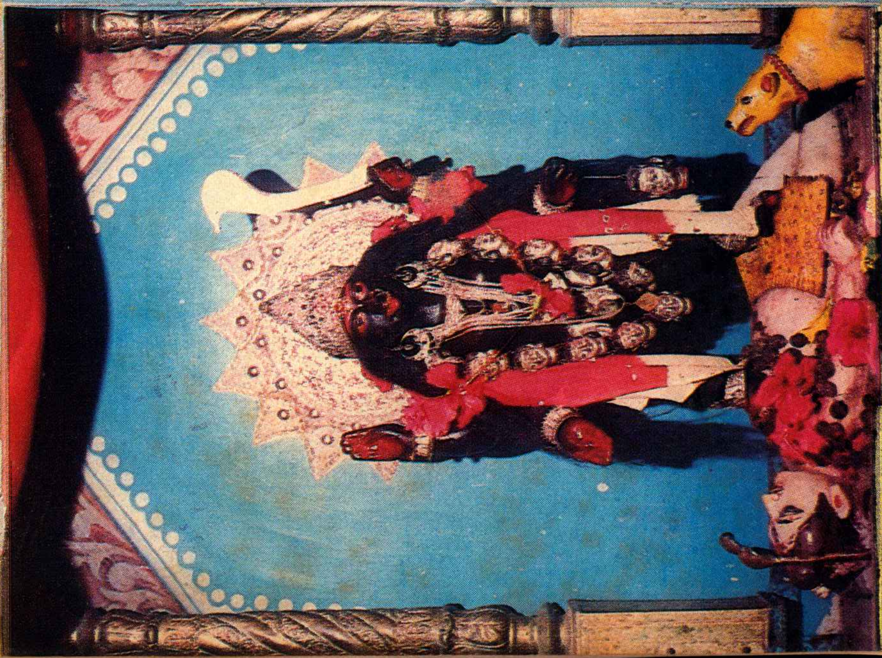
श्रीदक्षिणा काली, रज-रप्पा

'रज-रप्पा'—मेरे संस्मरण

श्री विपिनबिहारी शरण,
* **कुमुद प्रीता ट्रस्ट, रज-रप्पा, राँची (बिहार)**

लीला-मय सुन्दर अरण्याच्छादित तपो-भूमि—'रज-रप्पा'

यह वही **'राज-रप्पा'** है, जहाँ राजा रुद्रनारायण घोषाल सिद्ध हुए थे और आज भी जिनके वंशज वर्तमान पण्डा हैं। वे उसी मन्दिर में सन्थाल-सरदार के पुत्र जानकी की रक्षा के लिए मन्दिर में ही अन्तर्ध्यान हो गए थे, फिर निकले नहीं। इसीलिए आदि - वासियों के शब्दों में **'राजा रोपाय गया'** अर्थात् **'राज-रप्पा'** नाम प्रचलित हो गया। प्रकृति के इस लीला-मय—सुन्दर अरण्याच्छादित तपो-भूमि ने युग-युगान्तर से **'भैरवी'** एवं **'दामोदर'** नद के मिलन-आनन्द से उच्छ्वसित होकर अनेक प्राणियों को अपनी शीतल छाया में आश्रय दिया है। पल्लव-मरमर-ध्वनि की तानों से स्वर मिलाते हुए विहङ्गों के मधुर कल-रव को उन प्राणियों की **'ॐ माँ छिन्न-मस्ता'** की वेद-सम्मत-ध्वनि के रूप में सुनने के लिए वन्य जीव, पक्षी और मनुष्य कान लगाए रहते हैं। वन-राज व्याघ्र-शिरोमणि आहार-दुर्लभ-सुलभ सब प्राणियों के साथ एक ही वृक्ष की छाया में रहकर मन्दिर की शङ्ख-ध्वनि सुनते-सुनते अपनी स्वाभाविक हिंसा-वृत्ति को भूल गए हैं। सजल नयनों से, एकाग्र-चित्त होकर वे भी सुधा-मय **'ॐ छिन्न-मस्ता'** का गान सुनते हैं। सुना है, आज भी हिंसक पशु मन्दिर की सीमा पर किसी प्रकार का हिंसात्मक कार्य नहीं करते।

फिर भी एक समय था कि साधकों के इस दुर्गम स्थान में किसी को आने का कोई उपाय नहीं था। जनपथ से आठ मील दूर तक लम्बे बीहड़ रास्ते को पार करके **'महा - माया छिन्न - मस्ता माँ'** के दर्शनार्थ आना पड़ता था। हिंसक पशुओं से युक्त इस वनाञ्चल को पार करना अत्यन्त कठिन था। दिन के समय भी मशाल जलाकर दल-बद्ध रूप से **'माँ छिन्न-मस्ता'** की पूजा कर अपराह्न २.०० बजे तक लौट आना पड़ता था। उस समय यहाँ रात्रि-वास करना साधारण मनुष्यों के लिए स्वप्नातीत था। यह **'राज-रप्पा'** बिहार प्रदेश के हजारीबाग जिले के रामगढ़ अवर प्रमण्डल के अन्तर्गत है, जो राँची-पटना राज-मार्ग पर **'राँची'** से ४५ मील की दूरी पर अवस्थित है। रमणीय सनातन धर्म का जागृत मूर्त स्थान **'ॐ माँ छिन्न-मस्ता'** का मन्दिर **'रामगढ़'** से १५ मील दूरी पर **'चित्तरपुर'** होते हुए अवस्थित है। इस मन्दिर की विलक्षणता का अनुभव देखने से ही हो सकता है। शब्दों में उसका वर्णन करना सम्भव नहीं।

ॐ मां छिन्नमस्ता के दर्शनों का सौभाग्य

मेरा जन्म **'बिहार'** प्रदेश के **'राँची'** नगर में हुआ। मुझे याद है कि सात या आठ साल की आयु से मुझे **'ॐ माँ छिन्न-मस्ता'** के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त रहा है। विन्ध्याचल माई के प्रसाद-स्वरूप मेरे माता-पिता ने मुझे प्राप्त किया। सम्प्रति मैं बिहार सरकार के अधीन सिविल इन्जीनियर पदाधिकारी हूँ। अपने सेवा-काल में बारह साल मैं छोटा-नागपुर से अलग रहा और कदाचित् माँ की ही प्रेरणा से मेरा स्थानान्तरण नवम्बर, १९७० में राँची जनपद में हुआ।

१९५२ से १९७१ के अन्तराल में मैंने मोह-शून्य, माया-मय, परम तीर्थ **'राज-रप्पा'** के **'ॐ माँ छिन्न-मस्ता'** के मन्दिर की बात कभी सोची तक नहीं। सुधी जनों के मुख से सुना है कि अनेक जन्मों के सौभाग्य के फल-स्वरूप ही देव-स्थान के दर्शन मिल पाते हैं। सम्भवतः वही हुआ। नियति के नियन्त्रित रथ-चक्र में घूमता-घामता मैं उस दिन शुभ प्रभात में मन्दिर के पद-तल में आ पहुँचा। अवगाहित देह से मन्दिर में प्रवेश कर जी भर विश्व-जननी के दर्शन किए। पुरोहित के द्वारा मातृ-आशीष-रूप जल-सिञ्चन से तृप्त हो गया। मातृ-पूजा की प्रेरणा से प्राण व्याकुल हो उठे। साध्य उपचारों से मातृ-वन्दना की। इसके बाद लौटने का समय हो गया। लौट आया, किन्तु मेरा मन वहीं पड़ा रह गया—**'ॐ माँ छिन्न-मस्ता'** के रञ्जित चरणों पर हो। रह - रहकर अन्तर से रो उठता, सोचता—**'माँ के पास से तो विदा ली नहीं जाती।'**

मर्त्य के लिए सुधा-मय स्वर्ग—'राज-रप्पा'

दिन बीतते गए। ॐ मातृ - दर्शन की प्रबल आतुर अभिलाषा से मैं दिग् - भ्रान्त हो उठता, किन्तु मैं सरकारी कर्मचारी था। कर्म की विवशता मुझे **'राज - रप्पा'** से बहुत दूर ले जाती। फिर भी मैं ॐ मातृ-दर्शन के लिए व्याकुल बना रहता। कर्म की व्यस्तता के बीच भी मैं **'राज-रप्पा'** के पथ की तीव्र पुकार सुनता रहता। इसी रूप में मैंने दो वर्ष व्यतीत किए। माँ के चरणों में मेरा व्याकुल मन विनय करता रहा, **'माँ, माँ ! दर्शन दो।'** अन्त में माँ ने मेरे प्राणों का क्रन्दन सुन ही लिया। अकस्मात् **'राज-रप्पा'** जाने का सुयोग आया और मैं मातृ - दर्शन के आकर्षण में उत्कण्ठा - पूर्ण होकर चला। मन्दिर पहुँचा। उस दिन की बात आज भी स्मरण आ रही है कि अनाविल आनन्द से मेरा मन पुलकित हो उठा था। उसे भाषा द्वारा व्यक्त करना असम्भव है। उस दिन एक - एक क्षण माँ के पास व्यतीत कर रात में शून्य मन से कार्य-क्षेत्र में लौट आया। इस बार लौटने के पूर्व मातृ - चरणों में पुनः आने की प्रार्थना निवेदित की।

तब से बराबर सुयोग पाते ही मैं स-परिवार **'राज-रप्पा'** के लिए चल देता। यह तीर्थ - भूमि मेरे लिए मातृ - भूमि से अधिक प्रिय हो गई। इस जगह मुझे जैसे नव - जीवन लाभ हुआ हो। मैं अपने प्राणों की कामना-वासना सब कुछ **'ॐ माँ'** को अर्पित कर देता और उसका आश्चर्य - जनक रूप से फल प्राप्त होता। दिनानुदिन माँ के प्रति एक दुर्वार आकर्षण से मेरा मन अस्थिर हो उठता। सुयोग पाने पर माँ के दर्शन के अभाव से अतृप्त प्राण लिए निर्मम की तरह मानसिक आकांक्षा को दबाकर स्वयं को कार्य-रत रखता। फिर भी, मातृ-दर्शन की प्राप्ति की आशा मात्र से ही देह-मन परम आनन्द से सिहर उठते। तब यही सोचता—**'यही मर्त्य के लिए सुधा-मय स्वर्ग है।'**

अपूर्व रोमाञ्च और सौरभ-मय उच्छ्वास का प्रतीक—'रज-रप्पा'

नवम्बर, १९७१ की बात है। सारा दिन जी-तोड़ परिश्रम के बाद घर लौटा। सन्ध्या-वेला में बरामदे में बैठा था। अकस्मात् मातृ - चिन्तन से मन भाव - विभोर हो उठा। अपूर्व रोमाञ्च और सौरभ-मय उच्छ्वास ने मेरे प्राणों को आप्लावित कर दिया। पास में बैठी सह-धर्मिणी से बोला—**'चलो, कल ही हम लोग माँ के समीप चलें।'** मेरी पत्नी का मुख आनन्द से उज्ज्वल हो उठा। आवेग-पूर्ण स्वर में बोली—**'माँ के निकट जाने की तीव्र इच्छा होती है।'** दूसरे ही दिन हम लोग **'रज - रप्पा'** पहुँचे। मन्दिर में पूजा के उपचार प्रस्तुत हुए। पूजा पर बैठा। माँ के चरणों पर दृष्टि पड़ते ही अकस्मात् मातृ-चरण के नीचे की वेदी दृष्टि-गोचर हुई। देखा, वेदी के पत्थरों ने जीर्ण रूप धारण कर लिया है। मेरा मन रो उठा। सोचा—**'माँ के चरण - तल के इन पत्थरों को नवीन, श्वेत प्रस्तरों के द्वारा ढँक दूँगा। इस वेदी का नया संस्कार करूँगा।'** अदम्य आकांक्षा से मेरा मन चञ्चल हो उठा। उस चञ्चलता को हृदय में रखकर, माँ के चरणों में विदा-याचना कर अपने कार्य-क्षेत्र राँची लौट आया। अगले ही दिन एक राज-मिस्त्री को बुलाया। उसके साथ परामर्श किया। वेदी की नाप-जोख का काम उसे सौंप दिया। स्वल्प समय के भीतर ही राज - मिस्त्री ने सभी व्यवस्था हो जाने की मुझे सूचना दी। मैं उसे लेकर पत्थरों के साथ मन्दिर में आया। कार्य आरम्भ हुआ। तीन-चार दिनों के भीतर ही माँ की वेदी का कार्य पूर्ण हो गया।

ऊँची मीनार, चार कुण्ड, रुद्र-भैरव, पञ्च-वटी, राज-पथ विस्तृत पुष्पोद्यान-सहित माँ छिन्नमस्ता का अधिष्ठान—'रज-रप्पा'

प्रथम दर्शन का वह **'राज-रप्पा'** अब नहीं है। उसने नया कलेवर धारण कर लिया है। युग-युगान्तर से हजार-हजार वर्षों का वह पुरातन जीर्ण मन्दिर अभिनव रूप में, अपने पौराणिक वैशिष्टय को सुरक्षित रखते हुए, काया-कल्प हो जाने से ऊँची मीनार के साथ भव्य रूप में खड़ा है। मन्दिर के चारों कोनों में चार कुण्ड सह-सखी के रूप में विराजमान हैं। मन्दिर के दक्षिण की ओर **'रुद्र - भैरव'** का विराट् मन्दिर चारों कोनों में चार कुण्डों के स्थान - सहित प्रस्तुत हो रहा है। उसके सामने है—साधना-सिद्ध **'पञ्च-वटी'**। उसके दक्षिण में राज - पथ है। राज - पथ के दक्षिण में एक एकड़ जमीन में विस्तृत पुष्पोद्यान है। सम्पूर्ण स्थान सुन्दर प्राचीर से घिरा है।

माँ के मन्दिर का द्वार पूर्व-मुखी है। द्वार के सामने प्रशस्त भूमि पर अपूर्व सौष्ठव-पूर्ण मातृ-पूजा की छाग-बलि का स्थान है। सब मिलाकर **'राज-रप्पा'** अमरावती में परिणत हो गया है। मानो किसी पारस-मणि के स्पर्श से निराला वेश धारण कर लिया है। भक्त तान्त्रिक **'सुकुमार वसु ठाकुर'** की दुर्वार प्रेरणा, कठोर साधना और एकाग्र आत्म-निवेदन से **'ॐ माँ छिन्न-मस्ता'** विश्व-रानी होकर यहाँ विराजती हैं। श्री ठाकुर अगस्त, १९६२ में यहाँ आए। दस वर्षों के बीच इस स्थान का आमूल परिवर्तन हुआ है। वे मातृ-कृपा से धन्य हैं। उनका कार्य सफल हो रहा है।

भक्त तान्त्रिक सुकुमार वसु ठाकुर की साधना-स्थली—'रज-रप्पा'

फरवरी, १९७२ में तान्त्रिक महाशय से मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ। **'पञ्च-वटी'** के आश्रम-गृह में मेरे साथ बैठकर वे कई बिशिष्ट व्यक्तियों के साथ बातें कर रहे थे। मुझसे सामान्यतः कई बातें हुईं। मुझे प्रबल आकर्षण का अनुभव हुआ। मेरे अग्रज का स्थान उन्होंने मेरे अनजाने ही प्राप्त कर

लिया। वह एक आश्चर्य-पूर्ण मिलन-मुहूर्त था। दादा सुकुमार की निर्देशित तिथि पर माँ के मन्दिर में उनसे पुनः सम्पर्क हुआ। मन में लगा जैसे कितने ही जन्म-जन्मान्तरों का सम्बन्ध हो। साथ में थीं मेरी पत्नी कुमुदशरण, माँ और सन्तानें। मेरे समस्त परिवार को दादा ने अपना समझा। मन्दिर में घूम-घूमकर सब कुछ दखाया। **'रुद्र-भैरव'** के मन्दिर को दिखाकर बोले—**'इसी स्थान में मेरे तृतीय वर्ष का छाग-मेष यज्ञ पूर्ण हुआ है।'**

उक्त यज्ञ-कुण्ड की रचना मन्दिर की भित्ति के मध्य स्थल पर हुई थी। मन्दिर की भित्ति १८ फीट नीचे से खड़ी की गई है। मन्दिर की छत तक का सारा कार्य दादा ने अपने खर्च से सम्पन्न किया। १६६६ में उनसे मिलने बेरमो-निवासी श्री अवधबिहारी सिंह आए। उन्होंने **'रुद्र-भैरव'** मन्दिर के परवर्ती सभी कार्यों का दायित्व स्वयं ग्रहण किया। तब से वे मन्दिर का निर्माण-कार्य करा रहे हैं। दादा ने **'ॐ माँ छिन्न-मस्ता'** के मूल मन्दिर का संस्कार कलकत्ता के पाल चक्रवर्ती के मालिकों द्वारा कराया। कम्पनी के मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर श्री विजन चक्रवर्ती किसी कार्य से दादा के पास आए थे। उनसे मूल मन्दिर की प्रति-श्रुति लेकर दादा के एक भक्त श्री चम्पालाल पोद्दार ने सारा कार्य कराया। **'महिष-बलि'** के स्थान का निर्माण किया है कतरात-निवासी श्री जयसुखलाल जान एवं जी. ए. सूरी ने। गृह के पूर्व और पश्चिम-भाग के स्थान की रचना धनबाद-निवासी डॉ. सन्तोष सेन ने की। **'मुण्डन - कुण्ड'** प्रस्तुत हुआ है श्री जगद्बन्धु सिंह के द्वारा। मन्दिर के नीचे **'चैताल'** के ईशान कोण के **'यज्ञ - कुण्ड'** को धनबाद के मैजिस्ट्रेट श्री लाहा ने तैयार कराया है। वायु-कोण के **'कुण्ड'** का निर्माण रामगढ़ - निवासी काण्ट्रेक्टर श्री वैद्यनाथ चटर्जी ने कराया है। नैऋत कोण के **'कुण्ड'** का निर्माण रामगढ़-निवासी फोटोग्राफर श्री शङ्करप्रसाद भट्टाचार्य ने किया है। अग्नि-कोण के 'कुण्ड' को माराफारी की किसी संस्था ने श्री जगदीश पाण्डेय के द्वारा प्रस्तुत किया है। कलकत्ता के १२ ए और १२ बी वन-पथ के मालिकों ने प्राचीन घेरे के विशाल **'चैताल'** को तैयार कराया है। सीढ़ी के उत्तर कोने पर एक **'भोग - गृह'** (नैवेद्य-गृह) का निर्माण चास-निवासी श्री बी. बी. झा के द्वारा हो रहा है। दादा उस समय बङ्गाल बस सिण्डिकेट के सभापति थे। शेष समस्त कार्य दादा के अपने खर्च से पूर्ण हुआ है। दादा के सभी कामों के एक-मात्र साथी थे—आजमगढ़-निवासी श्री पल्टू सरदार।

घूम-फिरकर सब देखने-सुनने के बाद हम लोग मन्दिर के उत्तर भाग में **'दामोदर'** के द्वार पर आ पहुँचे। दादा एक सीढ़ी दिखाकर बोले—**'यह १०-१२ फीट गोलाकार सीढ़ी मेरे अनुरोध पर युवक श्री देवेन्द्र सिंह ने बनाई है। यहाँ से दामोदर के जल पर्यन्त एक सीढ़ी हो जाने से भक्ति - प्राण जनता का बड़ा उपकार होगा।'** तुरन्त मेरे मुख से निकल गया—**'मैं इस कार्य को आरम्भ करूँ, दादा ?'**

वे आनन्द से अधीर होकर बोले—**'तुम यह कार्य करोगे !'** मैंने उत्तर दिया—**'हाँ, दादा।'** दादा ने कहा—**'तब इस घाट का नाम होगा : तान्त्रिक घाट।'**

माँ के मन्दिर की सन्ध्या-आरती के अन्त में माँ को प्रणाम कर मैंने दादा से विदा ली। घर आने पर मेरा मन चिन्ता से अस्थिर हो उठा। दो-तीन के बाद ही घाट का काम आरम्भ कर दिया। २० फीट चौड़े और २०० फीट लम्बे इस घाट का काम २२ मई, १६७२ को समाप्त हुआ। उसी दिन घाट के उद्घाटन का उत्सव दादा के ही द्वारा सम्पन्न हुआ। समारोह के उल्लास के बीच दिन कट गया। उस रात को मैं मन्दिर में ही रह गया।

माँ छिन्नमस्ता की अपूर्व कृपा का अनुभव—'रज-रप्पा'

अब मैं प्रायः **'माँ छिन्न - मस्ता'** के मन्दिर में जाने लगा। एक रात दादा ने मुझे और एक सज्जन को मध्य-रात्रि में बैठने के लिए कहा। मन्दिर में घोर अन्धकार था। मैं जब भी इष्ट - मन्त्रों के जप को माँ को समर्पित करता था, तो घण्टी बजती थी ! ऐसा तीन बार हुआ, तब मैं मन्दिर से बाहर निकल आया और दादा को पुकार कर यह बात बताई। पेट्रोमेक्स मँगवाकर मन्दिर के भीतर जब हम लोगों ने निरीक्षण किया, तो वहाँ कहीं घण्टी नहीं थी ! उसके बाद हम लोग विश्राम को चले गए। यहाँ उल्लेखनीय है कि **'माँ छिन्न-मस्ता'** का वास **'दामोदर नद'** और **'भैरवी नदी'** के सङ्गम-स्थल पर है। वहाँ से तीन विचित्र प्रकाश निकलते हैं, जिनका दर्शन साधकों को माँ की कृपा के फल - स्वरूप निस्तब्ध रात्रि में ही कभी-कभी मिल पाता है।

मेरी दीक्षा भी बड़ी विलक्षण रीति से हुई। एक दिन रात्रि दस बजे मेरे राँची निवास-स्थान पर दादा आए। उन्होंने मुझसे कहा कि **'माँ की आज्ञा से तुम्हें दीक्षा देना है।'** इस पर मैंने उनसे काफी तर्क-वितर्क किया कि मेरी अवस्था ३२ या ३३ साल की है और इतनी कम आयु में मुझे दीक्षा की क्या आवश्यकता है ? यह वार्तालाप करीब चार बजे भोर तक चलता रहा। मेरे मना करने पर वे काफी बिगड़ गए और बोले कि **'माँ की आज्ञा से आया हूँ।'** मुझे समझ में नहीं आया, फिर भी उनकी बात रखने के लिए मैंने दीक्षा की हामी भर दी, किन्तु मैं पूजा नहीं करूँगा, इस शर्त के साथ। इससे पहले उन्होंने मेरी स्व. माँ श्रीमती राधिका देवी को दीक्षा दी थी। जिस मन्त्र से माँ ने मुझे दीक्षा दी थी, वही मन्त्र गुरु ने मुझे दिया। दीक्षा लेने के लिए मैं कलकत्ता गया। उन दिनों की बात मुझे आज भी याद है कि श्री गुरु जी ने मुझे एक मन्त्र दिया और बोले—**'रात्रि भर इस मन्त्र को जपो, सुबह दीक्षा होगी।'** उस समय हमारी एक-वर्षीया बच्ची सुश्री नेहा कल्याणी सो रही थी। चार बजे सुबह का समय था, उसे प्रणाम किया, तो बच्ची ने सोई अवस्था में ही अभय-मुद्रा दिखाई। यह दृश्य मैंने अपनी पत्नी को जगाकर दिखाया और मन में माँ का आभार माना। दूसरे दिन दिसम्बर, १९७२ में मेरी दीक्षा हुई। मेरे गुरु **'आचार्य करुणामय सरस्वती जी महाराज'** वेद के प्रकाण्ड विद्वान् और देवी - भक्त थे। उनकी आज्ञा से मैं विमला माई एवं जगन्नाथ जी के दर्शन करने **'पुरी'** गया और लौटकर राँची चला आया।

जनवरी, १९७३ में मैं अभियन्ता के कार्यों को करते हुए कठोर परिश्रम करने लगा। नित्य रात में लगभग दस बजे आता और सबेरे सात या आठ बजे निकल जाता। एक दिन अँगीठी जला कर, थका होने के कारण सो गया। अचानक मुझे याद आई कि पुल पर ढलाई है, मेरे न रहने से सम्वेदक सङ्कट में पड़ सकता है। अचानक उठने के कारण मैं जलती हुई अँगीठी पर गिर गया और अचेत हो गया। उसी कमरे में चार बोतलें पानी की रखी थीं, जो अचानक आग पर गिरीं और आग बुझ गई। बाद में पूछने पर ज्ञात हुआ कि किसी ने वहाँ पानी नहीं रखा था ! यह बात आज भी रहस्य बनी हुई है। मुझे काफी गहरे जलने के घाव थे एवं बाँयाँ अङ्ग बुरी तरह से जल गया था, जिसे ठीक होने में चार-पाँच महीने लग गए। चार महीने बाद 'स्क्रीन ड्राफ्टिङ्ग' का आपरेशन होनेवाला था। अतः मैं आर. एम. सी. एच. राँची में भर्ती हो गया। मैं अपने बेड पर सोया हुआ था कि अचानक ऊपर से घूमता हुआ सीलिङ्ग फैन गिर पड़ा, किन्तु मेरा बाल भी बाँका न हुआ ! अस्पताल में देखनेवालों में

एक साधु भी थे। उन्होंने मुझसे कहा—**'बेटा ! तुम माँ की इतनी पूजा करते हो, तो भी माँ ने तुझे यह फल दिया !'** प्रत्युत्तर में मैंने कहा—**'महाराज ! माँ ने तो मुझे बचा लिया !'**

चूड़ीहारे की चामत्कारिक कथा

उक्त घटना के बाद मेरा स्थानान्तरण हजारीबाग जिले में हो गया। यहाँ से मुझे माई के स्थान को जाने में बड़ी सुविधा हो गई। मैं प्रत्येक अमावास्या एवं पूर्णिमा को माँ की पूजा हेतु जाने लगा। यही क्रम अब भी चल रहा है। उन्हीं दिनों तान्त्रिक घाट के चबूतरे पर बैठकर शङ्ख-चूड़ी बेचनेवाले चूड़ीहारे की कथा ज्ञात हुई। यह चूड़ीहारा वर्षों पूर्व **'राज-रप्पा'** में जिस दिन चूड़ी बेचने आया, उस दिन उसकी एक भी चूड़ी नहीं बिकी। निराश होकर वह माई को उलाहना देने लगा कि **'तेरे दरबार में माँ ! मैं क्या भूखा रह जाऊँगा ?'** अचानक वहाँ एक अत्यन्त सुन्दर नवयुवती लाल वस्त्र पहने हुई आई और शङ्ख-चूड़ी पहनने की इच्छा प्रकट की। चूड़ी पहनने के बाद उसने कहा, **'मेरे पिता जी गाँव गए हुए हैं। वहीं के मन्दिर के ताखे पर तुम्हारा पैसा एक पोटली में रखा हुआ है। जाओ, उनसे कहकर ले आओ।'** चूड़ीहारे ने हेसापोड़ा गाँव जाकर पुजारी से पूरा विवरण कह सुनाया और पैसे की माँग की। पुजारी बड़े आश्चर्य में पड़ गए और क्रोधित भी हुए क्योंकि उनकी कोई सन्तान नहीं थी। चूड़ीहारे के बहुत अनुनय-विनय करने पर वे मन्दिर में गए, तो देखा कि ताखे पर सचमुच एक पोटली रखी हुई थी। पोटली में उतने ही पैसे थे, जितने कि नवयुवती ने बताए थे। पैसे पाने के बाद पुजारी ने चूड़ीहारे से कहा, **'ठीक है, जिसने तुमसे कहा था, उससे मेरी भेंट करा कर ये पैसे ले लो।'** चूड़ीहारा राजी हो गया और पुजारी को लेकर घाट पर पहुँचा, लेकिन वहाँ कोई नहीं था। इस पर पुजारी ने उसे डाँटा। चूड़ीहारे ने रो-रोकर कहा, **'माँ, यह तुम्हारा कैसा स्थान है, जहाँ मुझे पग-पग पर अपमानित होना पड़ रहा है ! अगर मैं झूठा हूँ, तो मैं आत्म - दाह कर लूँगा, नहीं तो पहनी हुई चूड़ी को दिखलाओ।'** अकस्मात् दामोदर दह से बिजली-सी कौंधी और दोनों हाथों में चूड़ी खनकती हुई दिखाई दी। यह दृश्य देखते ही पुजारी एवं चूड़ीहारा—दोनों भौचक्के-से रह गए और अचेत होकर गिर पड़े। होश में आने पर पुजारी ने चूड़ीहारे को पैसे दे दिए और दोनों अपने-अपने घर को लौट गए।

सिद्ध-क्षेत्र 'रज-रप्पा' की कुछ चमत्कार-पूर्ण आश्चर्य-जनक घटनाएँ

उक्त कथा के साथ ही यह भी सुनने में आया कि आश्विन-कार्तिक के महीने में बड़ा सुगन्धित धुआँ मन्दिर से निकलता था। साथ ही करताल और झाल की आवाज शून्य से सुनने में आती थी। इस प्रकार की कथा-वार्ता सुनते हुए माँ के पूजन और दर्शन हेतु मेरा आना-जाना चलता रहा। १९७६ में **'सहस्र-चण्डी यज्ञ'** का आयोजन हुआ था। प्रति-दिन हवन होता था। एक दिन रात्रि के दस बजे अचानक मुझे मण्डप के पास, जहाँ हवन, पाठ इत्यादि हो रहा था, जोरों का हल्ला सुनाई पड़ा। हवन-कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित थी और देखा गया कि हवन-कुण्ड के ठीक पास एक नाग ध्यान - मुद्रा में बैठा है। सुबह चार बजे वह नाग स्वतः वहाँ से चला गया। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि सन् ६१ या ६२ में जब दादा आए थे, तो उनके साथ माई का कार्य करने के लिए आजमगढ़-निवासी श्री पल्टू सरदार भी आए थे। एक रात को जब वे मन्दिर की ओर जा रहे थे, रास्ते में उनका पैर एक काले नाग पर पड़ गया, जिसने उनके पैर को डँस लिया। यह खबर मिलते ही दादा दौड़ते हुए आए और उन्हें उठा कर माई के मन्दिर में ले जाकर लिटा दिया और माई से प्रार्थना की कि **'इन्हें कुछ हो गया, तो मेरी**

काफी बदनामी होगी और आपके कार्य हेतु कोई आदमी आने को तैयार नहीं होगा।' उन्होंने मशाल जलाकर तीन-चार सन्थालों को ओझा बुलाने के लिए भेजा। काफी रात बीत चुकी थी, किन्तु ओझा अभी तक नहीं आया था। सहसा दादा ने पल्टू सरदार की तरफ देखा कि उनके पाँव से, जहाँ नाग ने डँसा था, एक काले रङ्ग का तरल पदार्थ निकल रहा है। सुबह होने पर ओझा आया, तो उसने बताया कि **'ये पूर्ण रूप से विष-मुक्त हो चुके हैं।'** इस प्रकार पल्टू सरदार बच गए और वे दादा-माई के चरणों पर नत-मस्तक हो गए।

१९७५ की श्रावण शुक्ला सप्तमी को मेरी पूज्या माता का स्वर्ग-वास हो गया। उनकी मृत्यु **'काली माँ'** की आरती लेने के बाद हुई थी। इसलिए मेरी पत्नी के मुख से हठात् निकला, **'इनकी समाधि पर दक्षिणा काली माई का मन्दिर बनाएँगी।'** उसी समय मैंने माँ की मृत्यु के दुःख को सहन कर लिया और दूसरे दिन उसी स्थान पर दाह-संस्कार किया, जहाँ आज **'माँ दक्षिणा काली'** का मन्दिर अवस्थित है। इस घटना के बीस दिन पूर्व ही मैं अपने अधीनस्थ कर्मचारियों एवं पल्टू सरदार के साथ उसी स्थान का निरीक्षण करने गया था कि अचानक मुझे भय का अनुभव हुआ और वह स्थान मुझे भयङ्कर लगने लगा, जिससे मैं काँपकर पीछे गिरा, लेकिन मेरे साथ के पदाधिकारियों ने मुझे सँभाल लिया और मैं गिरने से बच गया। इसके साथ ही मैं उस स्थान से बैरङ्ग वापस आ गया। बीस दिनों के बाद उसी स्थान पर मैंने माँ का दाह-संस्कार किया।

यहाँ यह बताना युक्ति-सङ्गत होगा कि जब दादा शिवकुमार वसु या उनके गुरु-भाई अवध-बिहारी सिंह पूजा के लिए बैठते थे, तब **'छिन्न-मस्ता माँ'** की मूर्ति पर दो मुखवाला नाग लिपटा रहता था या आकर बैठ जाता था। ऐसा ही एक काला नाग, जब **'काली-मन्दिर'** बन रहा था, तो मन्दिर की परिक्रमा एवं निरीक्षण करता रहता था। मन्दिर बनने के काफी दिनों बाद भी वह काला नाग इधर-उधर रेंगता हुआ दिखाई देता रहता था।

'दक्षिण माँ काली' के मन्दिर के लिए सभी सामान और मूर्ति हम लोगों ने कलकत्ता में बनवाई। मुझे याद है कि मूर्ति लाने के लिए कलकत्ता जाने से पहले मैं माँ के स्थान में गया। वहीं मन्दिर से थोड़ी दूरी पर एक औघड़ बैठे हुए दिखाई पड़े, जिनसे बातों-बातों में पता चला कि वे **'तारा-पीठ'** से आए हैं। उन्होंने मुझसे धूनी-हेतु लकड़ी का प्रबन्ध करने के लिए कहा। थोड़ी देर बाद जब मैंने लकड़ी भिजवा दी, उन्होंने मुझसे कहा—**'मैं यहीं रहूँगा।'** इस पर मैंने उत्तर दिया—**'माई तो वास देती नहीं है, अतः आप कैसे रहेंगे ?'** कलकत्ते से वापस लौटने पर औघड़ तो नहीं मिले, लेकिन गुरु जी की आज्ञानुसार छः या सात दिनों के अन्दर ही उसी स्थान पर मन्दिर की आधार-शिला रखकर प्लिन्थ पर ही **'काल-भैरव'** की स्थापना की गई। कुछ काल व्यतीत होने के बाद उसे छत से ढँका गया।

'माँ दक्षिणा काली' के प्रतिष्ठापन के समय भी कुछ चमत्कारी एवं विस्मय-जनक घटनाएँ घटीं। मन्दिर की प्रतिष्ठा हेतु १३ छाग-बलि का विधान किया गया था। बलि के समय अधिकांश लोग बलि-स्थान पर एकत्र थे, किन्तु दादा के एक मित्र, जो कलकत्ते से आए थे, माई के मन्दिर में अकेले ध्यान-मग्न थे। छाग का मुण्ड, जो माई के मन्दिर में जाता था, उसे देखकर उनके मन में बड़ी घृणा उत्पन्न हुई एवं माई से पूछा—**'क्या माई ! तुम इसे ग्रहण करती हो ?'** उसी क्षण चौथा मुण्ड, जो धरती पर पड़ा हुआ था, सहसा उड़ा और माई के यन्त्र पर बैठ गया। तत्पश्चात् वह मुण्ड शून्य में गायब भी हो गया। इस घटना को देखते ही उन महाशय की घिग्घी बँध गई। वे दौड़ते हुए उन्मादी अवस्था में

बाहर आए और जोर से बँगला में बोले—**'बलि उड़ गया !'** लेकिन, उस समय हम लोगों ने उनकी बातों पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया क्योंकि हम लोग प्रतिष्ठा के क्रम में लीन थे। रात्रि के बारह बजे हम लोगों ने साँप की बलि दी एवं इसके बाद **'पञ्च-वटी'** तथा **'पञ्च-मुण्डी आश्रम'** की स्थापना की गई। ये सभी कार्य-क्रम कलकत्ते के तान्त्रिकों, पण्डितों एवं दादा सुकुमार वसु ठाकुर के मार्ग - दर्शन में सम्पन्न हुए। नर-मुण्ड के अभाव में मैंने अपनी छाती का एक टुकड़ा मांस, जिसे डाक्टरों ने काटकर निकाला था, प्रस्तुत किया। शास्त्रानुसार उसे ही **'नर - मुण्ड'** के स्थान पर **'पञ्च - मुण्डी आसन'** में रखा गया।

मुझे अब भी याद है कि माँ काली के प्रतिष्ठापन-समारोह के दिन नीचे **'दामोदर नद'** में ऐसा लगता था कि रात-भर कीर्तन होता रहा हो। कीर्तन किसने किया, यह भगवती ही जानें, लेकिन मेरे कानों में मृदङ्ग की आवाज रात भर गूँजती रही थी। इसी बीच सहसा एक दिन ऐसी घटना **'राज-रप्पा'** में घटी, जिसने मेरे अन्दर पूजा-पद्धति जानने की इच्छा जगाई। मुझे याद है कि करीब चार बजे दिन में जब **'राज-रप्पा'** जन-शून्य था और मैं **'छिन्न-मस्ता माँ'** के द्वार पर ध्यान - मग्न था कि इतने में किसी की आहट से चौंका। देखा कि एक काला भुजङ्ग - सा आदमी घाट से स्नान कर पूजा के लिए चला आ रहा है। उसने मुझसे हनुमान जी के मन्दिर के बारे में पूछा। उस समय मैंने कहा—**'यहाँ हनुमान जी का मन्दिर नहीं है।'** इस पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए वह बोला—**'यह कैसा स्थान है, जहाँ हनुमान जी का मन्दिर नहीं है !'** कुछ समय तक मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ रह गया। तत्पश्चात् उसके पीछे ही सम्मोहित अवस्था में **'काली-मन्दिर'** तक जा पहुँचा। उसने मुझसे कहा—**'आप पूजा करा दीजिए !'** मैंने कहा, **'मुझे पूजा-पद्धति नहीं आती।'** प्रत्युत्तर में उसने कहा—**'आपने मन्दिर की प्राण - प्रतिष्ठा की है और आपको पूजा-पद्धति नहीं आती !'** तब उसने स्वयं पूजा की और गायब हो गया। इस घटना ने मुझे इतना मर्माहत किया कि उसी क्षण मैं दादा के पास पहुँचा और व्याकुल - भाव से बोला, **'मैं पूजा-पद्धति सीखना चाहता हूँ।'** इस वाक्य को सुनते ही दादा ठठाकर हँस पड़े क्योंकि मैंने उन्हीं से पूजा नहीं करने की शर्त रखी थी। इसके बाद पूरे मनोयोग से मैंने पूजा-पद्धति दादा से सीखी।

तन्त्र-सारोक्त **'धात्री-प्रयोग'** का अनुष्ठान

एक दिन रात्रि को मेरे अशोकनगर, राँची-निवास पर दादा के साथ तन्त्रों की चर्चा शुरू हो गई। उन्होंने मुझे कृष्णवागीश लिखित **'तन्त्र-सार'** के **'धात्री - प्रयोग'** के विषय में बतलाया। उसका सारांश इस प्रकार है—**'कृष्ण पक्ष की अष्टमी को धात्री (आँवला) का पेड़ लाया जाए एवं उसकी पूजा की जाए। चतुर्दशी से मन्त्रों का जप किया जाए। मन्त्र जपते समय साधक को गीला वस्त्र धारण करना होगा तथा उसी वस्त्र में सुगवा साँप को इस तरह से बाँधकर रखना होगा कि साँप शरीर से स्पर्श करता रहे। साधक को मौन रहना होगा। एक लाख मन्त्र जप पूरा होते ही साँप को छोड़ दिया जाता है। यदि वह साँप वापस आकर साधक को काट लेता है, तो वह मन्त्र सिद्ध होगा, अन्यथा नहीं।'**

दादा ने मुझे जब इसे पढ़कर सुनाया, तो मुझे हँसी आ गई। फिर मैंने पूछा कि **'क्या यह सम्भव है ?'** उन्होंने दृढ़ता से कहा, **'बिल्कुल सम्भव है।'** तब मैंने उनसे इस प्रयोग हेतु कलकत्ते से पण्डित बुलाने को कहा। कुछ समय बाद दादा ने एक पण्डित जी को उक्त प्रयोग हेतु पूजा की सभी सामग्रियों के साथ **'कलकत्ते'** से **'राज-रप्पा'** के लिए विदा किया, लेकिन दुर्भाग्य-वश उनकी टैक्सी ररी

श्रीभैरवी, रज-रप्पा

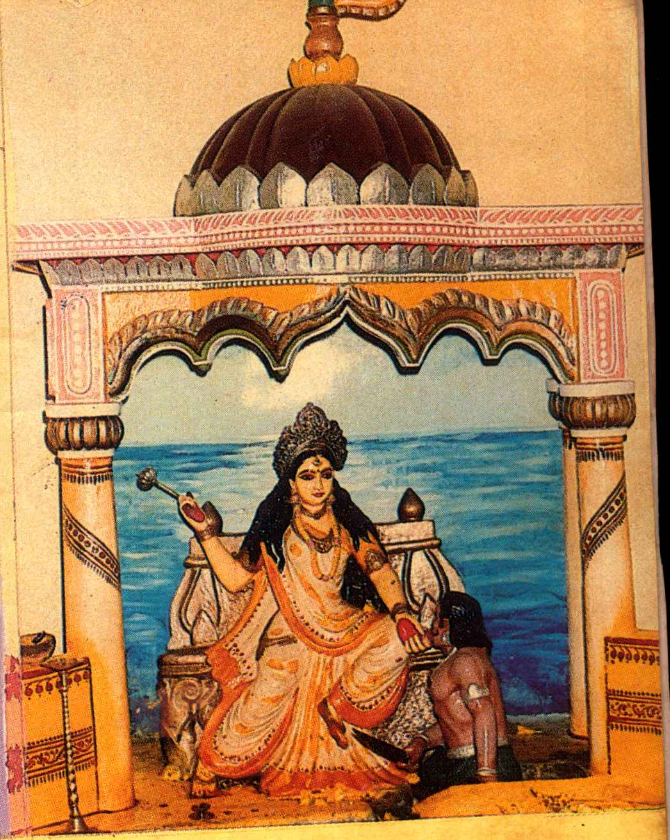

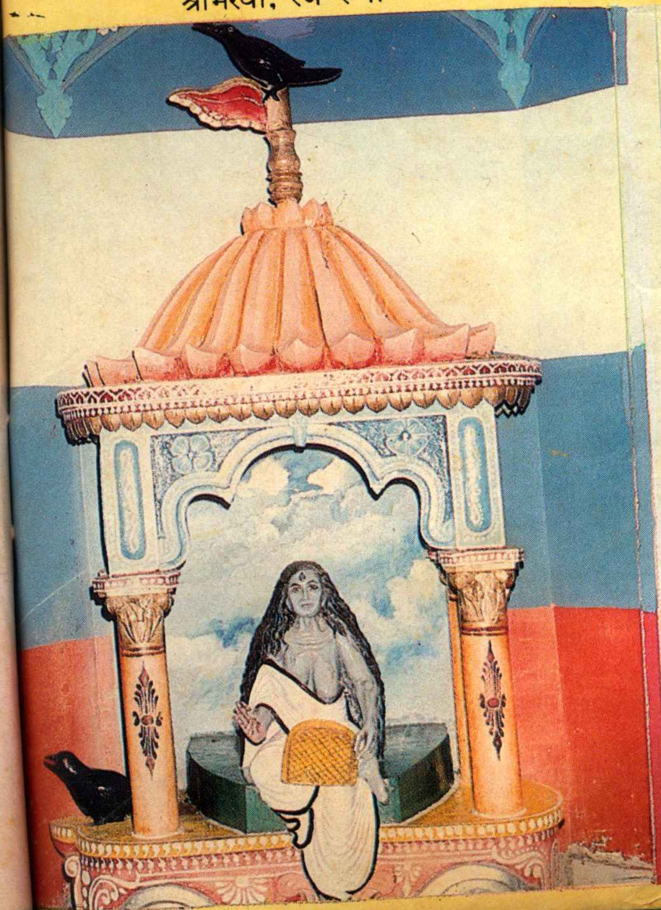

श्रीमातङ्गी, रज-रप्पा

श्रीमहा-काल भैरव, रज-रप्पा

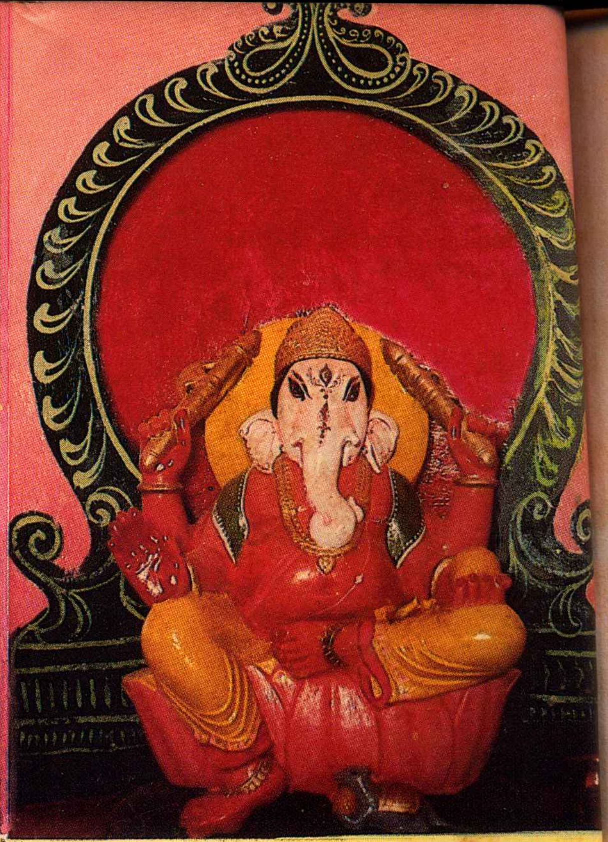

श्रीगणेश, रज-रप्पा

श्रीबटुक भैरव, रज-रप्पा

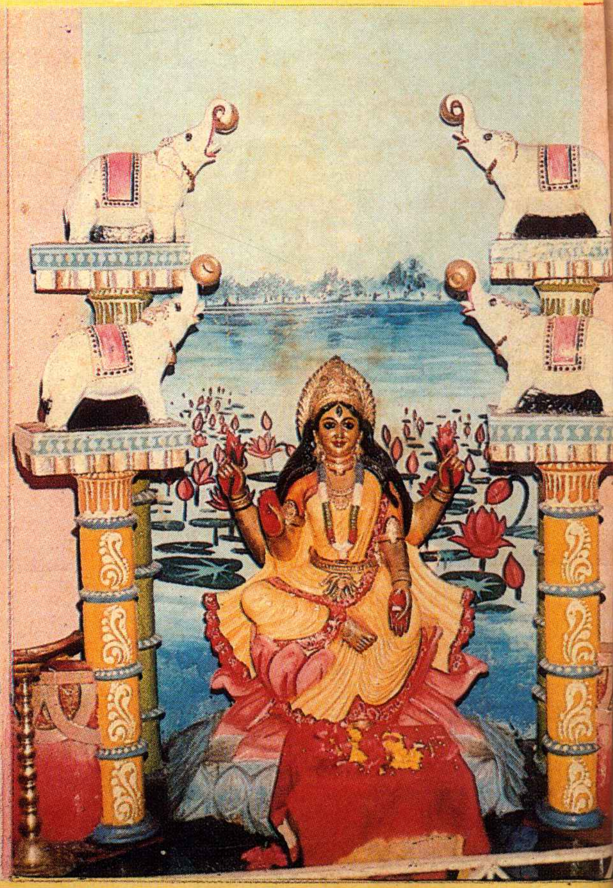

कुण्डा के पास दुर्घटना-ग्रस्त हो गई, जिससे पण्डित जी के पाँव में फ्रैक्चर हो गया एवं उसी समय सभी सामान के साथ साँप भी लुप्त हो गया। इस दुर्घटना के बाद दादा ने मुझे इस प्रयोग को करने के लिए बाध्य किया क्योंकि हम लोगों ने इसका सङ्कल्प ले रखा था।

दादा के समझाने-बुझाने पर मैं राजी हो गया, किन्तु मैंने साँप साथ रखकर जप करने में अपनी असमर्थता बताई। कहा, **'साँप साथ रखकर मैं जप नहीं कर सकता।'** इस पर दादा ने साँप को बाँध कर जप करने का आदेश दिया और बोले, **'जप करते समय आप ऐसा अनुभव करते रहें कि साँप आपको स्पर्श कर रहा है।'** इस पर मैं तैयार हो गया और **'चण्डी-कार्यालय'** से प्रकाशित **'तन्त्र-सार'** का गहन अध्ययन किया। तदनन्तर मैंने इस पुरश्चरण को चार दिनों तक मौन रहकर एवं गीले वस्त्रों को धारण कर किया। अन्तिम दिन जब मैं इष्ट-पूजा करने गया, तो सन्ध्या के चार बजे थे। यहाँ कपड़े की योनि को, जो ठीक से बनी नहीं थी, मैं और पण्डित दुर्गादत्त ठीक करने में जुट गए। अचानक मैंने देखा कि उस स्थान पर सुगवा साँप पहले से ही लिपटा हुआ था। बाँएँ हाथ से मैं योनि को ठीक करने लगा कि सहसा उस साँप ने दाएँ हाथ की अनामिका में डँस लिया। यह देखते ही पण्डित दुर्गादत्त बड़ी तेजी से बाहर निकले एवं हल्ला करने लगे कि **'साहब को सुगवा साँप ने डँस लिया है!'** मेरी पत्नी को जब यह समाचार मिला, तो उसने दादा से कहा कि **'यह क्या काम आपने करवाया ?'** इधर साँप पहले काली माई के यन्त्र पर, फिर माई के पैर पर गिरकर शून्य में विलीन हो गया। मेरी पत्नी को सान्त्वना देते हुए दादा बोले कि **'इन्हें कुछ नहीं होगा। यदि इन्हें कुछ हो गया, तो मैं माई के सामने अपने प्राणों को उत्सर्ग कर दूँगा।'** फिर रो-रोकर माई की महिमा का बखान करने लगे। कुछ समय बाद मैं ठीक हो गया। रात-भर हम लोगों ने हवन किए और सबेरे पुरश्चरण को समाप्त किया।

इन चार दिनों में मैं जब जप करता था, तो अजीब-अजीब रूप मेरे ध्यान में आते थे, जिसे बताना यहाँ उचित न होगा, लेकिन एक बात मैं बताना चाहता हूँ थि चौथे दिन जब एक लाख जप पूर्ण होनेवाला था, तो उक्त **'धात्री का पेड़'** ध्यान में कभी साँप दिखाई देता, तो कभी पेड़ ! पूजा के बीच नैवेद्य के रूप में आम या पपीता के फाँक रहते थे। जप करते समय ऐसा अनुभव होता था, मानो किसी ने नैवेद्य को हाथों से बखोर लिया हो।

एक दिन गुरु जी के साथ उनकी गोष्ठी में बैठा हुआ था। अचानक उन्होंने एक सज्जन से पूछा—**'क्या अभी माई का दर्शन नहीं होता ?'** उन्होंने धूमावती माई की साधना के बारे में बताया कि श्मशान में साधना करते समय धूमावती माई प्रकट हो गईं और खाने की इच्छा प्रकट की, तो साधक ने जो फल-फूल रखे थे, अर्पित कर दिए। माई के पुरश्चरण ने माई के प्रति मेरे दृढ़ विश्वास को और भी प्रगाढ़ बना दिया।

दस माई की स्थापना की पूर्व—भूमिका एवं कुछ प्रेरणा-दायक घटनाएँ

मुझे याद है कि दादा से जब पहली बार सन् ७२ में मिला था, तो उन्होंने भविष्य - वाणी की थी कि **'यह स्थान दश महा-विद्या का स्थान बनेगा।'** इस पर हम लोगों ने उनकी बातों को हँसी में उड़ाते हुए कहा कि **'यह आपकी कोरी कल्पना है।'** आज दादा हमारे बीच नहीं हैं। उनकी इच्छा-मृत्यु दिसम्बर, १९७९ में **'रज-रप्पा'** में हुई। १९८२ में दस माई का मन्दिर बनकर तैयार हुआ, तब उनकी बात, जो आज से दस या बारह वर्ष पहले कही गई थी, याद हो आती है। उन्होंने अपना समाधि-स्थल

मुझसे तान्त्रिक घाट पर १९७२ में ही बनवा लिया और हम लोगों को निर्देश दिया था कि उनका दाह-संस्कार **'राज-रप्पा'** में ही किया जाय, भले ही कहीं बाहर भी मृत्यु हो, लेकिन उनकी मृत्यु **'राज-रप्पा'** में ही हुई एवं दाह-संस्कार वहीं किया गया। उनकी मृत्यु के समय मैं और मेरी धर्म-पत्नी उपस्थित थे। मृत्यु के क्षणों में भी वे जप की मुद्रा में थे और मुझे याद है कि उनके मुख से बार-बार यह बोल निकलते थे कि **'काली की मूर्ति माँगी थी, कृष्ण की मूर्ति क्यों दी ?'** यह बात आज तक मेरी समझ में नहीं आई। जब हमने उनके शरीर को समाधि-स्थल पर जलाया, तो उनका दाहिना हाथ आशीर्वाद की मुद्रा में उठा हुआ था।

मई, १ ८२ में जब मैंने यह निर्णय लिया कि मैं आठो माई के मन्दिर का निर्माण करूँगा, उसी दिन सन्ध्या की गोधूलि-वेला में मेरी पत्नी और तिवारी को दादा के दर्शन बलि - स्थान में हुए। ज्योंही मैंने उन्हें **'दादा - दादा'** चिल्लाते हुए सुना, तो मैंने देखा कि वही मूर्ति बलि - स्थान में माई को प्रणाम कर रही है। मन्दिर से जब तक हम लोग दौड़कर पहुँच पाते, वे अन्तर्ध्यान हो चुके थे। जिस स्थल पर आठो माई के मन्दिर बने हैं, उनके पुरश्चरण मैंने वहीं किए हैं। धूमावती माई के पुरश्चरण के बाद मैंने मातङ्गी माई का पुरश्चरण किया। उनके मन्त्रों की सिद्धि का फल मैंने **'तन्त्र-सार'** में पढ़ा था कि मेघ का स्तम्भन, जल का स्तम्भन, अग्नि का स्तम्भन हो जाता है। मैंने मातङ्गी माई के मन्त्र का जप लगभग तीन हजार ही किया था कि देखा, **'राज-रप्पा'** में जोरों की वर्षा हो रही है। अचानक ही मेरे मन में विचार आया कि **'क्यों न मेघ के स्तम्भन का प्रयोग किया जाय !'** मन-ही-मन मैंने कहा कि **'हे मातङ्गी माई ! यदि आपके मन्त्र में शक्ति है, तो कृपा करके राज-रप्पा में वर्षा हो रही है, उसे बन्द कर दीजिए।'** ऐसा सङ्कल्प करके मन्त्र-जप करता रहा। दो - तीन मिनट के बाद जब मैंने पुनः देखा, तो आश्चर्य-चकित रह गया क्योंकि **'राज-रप्पा'** में बिलकुल वर्षा नहीं हो रही थी, जब कि बाहर घन-घोर वर्षा हो रही थी ! इस दृश्य को देखकर मन आनन्द-मय हो उठा। इतने में दादा शिवकुमार वसु दौड़ते हुए आए और बाहर से ही डाँट पिलाई। मैं उनकी बातों पर हँस रहा था और आनन्दित हो रहा था। तत्पश्चात् मैंने सङ्कल्प को वापस कर लिया। वर्षा फिर आरम्भ हो गई।

१९८५ में **'चण्डी-कार्यालय'** द्वारा प्रकाशित **'ललिता - सहस्र - नाम'** की प्रति मुझे प्राप्त हुई, जिसकी **'फल-श्रुति'** में यह लिखा है कि तीन दिनों तक रात्रि में जिस राजा का ध्यान कर सहस्र - नाम का पाठ किया जाता है, उसका आकर्षण होता है। उस समय मुझे **'श्रीविद्या'** के सम्बन्ध में कोई ज्ञान नहीं था, लेकिन **'ललिता-सहस्र-नाम'** का पाठ मुझे बहुत अच्छा लगता था। उन्हीं दिनों मुझे लोक-निर्माण के एक मन्त्री से मेरा कुछ आवश्यक काम आ पड़ा, किन्तु मैं उस कार्य हेतु पटना जाना नहीं चाहता था। अतः उक्त प्रयोग के अनुसार मैंने माई का ध्यान करके **'ललिता-सहस्र-नाम'** का पाठ उत्तर दिशा की ओर मुँह करके प्रारम्भ कर दिया। तीन दिनों के बाद मन्त्री जी स्वयं राँची आ गए और उन्होंने मेरे काम को करवा दिया।

बलि-सिद्ध क्षेत्र—'रज-रप्पा' का माहात्म्य

'माई छिन्न-मस्ता' की महिमा यह है कि आज तक जिसने भी जो कुछ माई से सच्चे दिल से माँगा है, उसे वही प्राप्त हुआ है। यह **'बलि - सिद्ध'** क्षेत्र है। बलि के रूप में छाग, नारियल इत्यादि चढ़ाए जाते हैं। **'राज-रप्पा'** सभी भक्तों के लिए **'कल्प-वृक्ष'** एवं **'काम-धेनु'** के समान है। जिन्होंने उनसे पुत्र माँगा, पुत्र मिला; धन माँगा, धन मिला। अपने भक्तों को उन्होंने क्या नहीं दिया ! माई के सामने

धरना देना मना है क्योंकि माई बीहड़ जङ्गलों में बिराजती हैं। लोकाचार है कि जो भी मनोकामना-सिद्धि के लिए आते हैं, वे **'भैरवी नदी'** या **'दामोदर नद'** से एक पत्थर उठाकर मन्दिर के ताखे पर रख दिया करते हैं एवं मनोकामना पूरी होने पर पुनः पत्थर को नदी में प्रवाहित कर दिया करते हैं। फिर यथा-सम्भव माई की यथेष्ट पूजा करने का सङ्कल्प लेते हैं। इसी विषय पर मैं एक छोटी-सी घटना को यहाँ उजागर करना चाहूँगा।

मेरे साढू बिहार सरकार के ए. डी. एम. के पद पर नियुक्त हैं। उनकी पुत्री का विवाह निश्चित नहीं हो पा रहा था। उन्हें माई की कृपा पर विश्वास भी नहीं था। पटना से जब उनसे फोन पर मेरी बातचीत हुई, तो मैंने उनसे कहा कि **'आप अपनी पत्नी को राँची भेजिए। माई अवश्य ही आपके कार्य को पूर्ण करेंगी।'** निराश तो वे हो ही चुके थे, उन्होंने अपनी पत्नी को राँची भेजा। वे हम लोगों के साथ **'राज-रप्पा'** गईं। जब मैंने उनसे नदी से एक पत्थर उठाकर लाने के लिए कहा, तो वे काफी बड़ा पत्थर उठाकर ले आईं। हम लोगों ने जब उनसे पूछा कि **'एक छोटे पत्थर से ही काम चल सकता था, तो इतना बड़ा पत्थर लाने की क्या आवश्यकता थी ?'** इस पर उन्होंने कहा कि **'माई को ज्यादा भार अनुभव होगा और मेरा काम जल्दी से कर देंगी।'** संयोग-वश वे पटना वापस चली गईं। दूसरे ही दिन दूरभाष से सूचना मिली कि उनकी पुत्री का विवाह पक्का हो गया है।

'वन्दे मातरम्'—आन्दोलन की जन्म-भूमि 'रज-रप्पा'

भारतीय स्वाधीनता हेतु संन्यासियों द्वारा प्रवर्तित **'वन्दे मातरम् आन्दोलन'** भी **'राज-रप्पा'** के इसी मन्दिर से प्रारम्भ हुआ था। श्री बङ्किमचन्द्र द्वारा रचित **'आनन्द - मठ'** में वर्णित स्थान यही **'राज-रप्पा'** है, जब बङ्गाल, बिहार एवं उड़ीसा एक ही प्रान्त में थे। उन दिनों प्रान्त का सूबेदार नवाब के अधीन था। 'सर्वे रेकार्ड्स आफ राइट' के खतियान में इस स्थान का नाम **'मठ'** के रूप में अङ्कित है। जब संन्यासी-आन्दोलन अधिक तीव्र हो गया, तो इसके मुगल शासकों ने इस आन्दोलन को दबाने के लिए नवाब मुर्शीदकुली खाँ ने रेजा खाँ नामक सिपहसलार को फौज-सहित भेजा। रेजा खाँ ने हजारी-बाग होते हुए दामोदर नद के उस पार अपना खेमा डाला। नदी उमड़ी हुई थी, इसलिए उसने वहीं से मन्दिर पर गोले बरसाने प्रारम्भ किए। एक गोला मन्दिर के उत्तर भाग में जा लगा और पूरा मन्दिर आग की लपटों से घिर गया। रेजा खाँ ने देखा कि आग के शोलों से घिरा मन्दिर, कभी तो **'मस्जिद'** के रूप में, तो कभी **'गिरजा-घर'** के रूप में, परिवर्तित हो रहा है। इस दृश्य से घबराकर रेजा खाँ बेहोश हो गया। होश में आने के बाद उसने फौज को वापस चलने का आदेश दे दिया। दादा सुकुमार वसु ठाकुर ने गोले के दागों को, जिन्हें देखा जा सकता था, १९६२ में मन्दिर के जीर्णोद्धार के समय बन्द करवा दिया।

माई को देन—बलि-सिद्ध 'रज-रप्पा' के कुछ आश्चर्य-पूर्ण प्रसङ्ग

'माई' का वास **'दह'** में है, यह बात बताई जा चुकी है। **'दामोदर नद'** और **'भैरवी नदी'** के सङ्गम-स्थल से कुछ ही दूरी पर वह स्थान है। जो वर्तमान माली **'माँ छिन्न - मस्ता'** की सेवा करते हैं, उनके पूर्वज माई के समक्ष ही भोग-बलि चढ़ाते थे। एक दिन माई के समक्ष बलि चढ़ाकर माली अपना खड्ग भूल कर वहीं छोड़ आया। अचानक याद पड़ने पर बन्द दरवाजे को खोलकर खड्ग को लेने के लिए पहुँचा, तो उसने देखा कि माई अपने अनुचरों के साथ भोजन ग्रहण कर रही हैं। उसी दिन माई

के द्वारा उसे आदेश मिला कि वह उनके समक्ष नहीं जाएगा एवं इस घटना को प्रकाश में नहीं लाएगा। घटना को प्रकाश में लाने के फल-स्वरूप उसके वंशज दीर्घायु नहीं होते।

इस **'बलि-सिद्ध'** स्थान में मन्दिरों की ओर से कोई **'बलि'** नहीं चढ़ाई जाती, अपितु उन लोगों द्वारा यह **'बलि'** चढ़ाई जाती है, जिनकी मनो-कामनाएँ पूर्ण होती हैं। इस सन्दर्भ में श्री चम्पालाल पोद्दार का उल्लेख यहाँ आवश्यक है क्योंकि उसने कलकत्ते से आकर **'बलि'** को रोकने के लिए यहाँ अनशन किया था, किन्तु एक महीने के बाद स्वयं उस स्थान को पक्का कराकर लौट गया। वह स्थान **'दामोदर महा-नद'** एवं **'भैरवी नदी'** की विपरीत रति-मुद्रा (पुरुष नीचे, स्त्री ऊपर) में **'राज - रप्पा'** में अवस्थित है। कितना प्राकृतिक एवं माई के ध्यान का यह कैसा अनूठा सङ्गम है, यह इस स्थल को देखने से ही पता चल सकता है। जिस समय चम्पालाल पोद्दार ने **'बलि'** रुकवाई थी, उस समय माई के खड्ग में आग लग गई थी। समाचार पाते ही दादा कलकत्ते से आए और **'बलि'** को पुनः चालू कर दिया।

आरम्भ में **'रज-रप्पा'** आने के लिए मार्ग केवल **'गोला'** से था, जिसे हम लोगों ने 'ग्राम्य अभि-यन्त्रण सङ्गठन विभाग' द्वारा बनवाया, लेकिन वर्षा ऋतु में **'भैरवी नदी'** को पार करने में यात्रियों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। उस समय 'लोक-निर्माण-विभाग' के मन्त्री श्री बुद्धदेव सिंह थे, जिन्हें इस स्थान से बड़ा स्नेह रहा है। उनसे अनुरोध करके **'चित्तूरपुर'** से **'राज - रप्पा'** के लिए पक्की सड़क का निर्माण कराया गया। एक दिन मेरे साथ श्री बुद्धदेव सिंह भी **'राज-रप्पा'** गए थे। मैंने उन्हें **'छिन्न-मस्ता माँ'** के मन्दिर में अकेले बैठा दिया। अचानक वे हाँफते हुए बाहर निकले और बोले कि **'जली हुई अगरबत्ती शून्य में घूम रही है।'** यहाँ यह उल्लेखनीय है कि **'माँ छिन्न-मस्ता'** के मन्दिर में **'श्री राहु जी'** पूजा करने के लिए आते हैं। इस प्रकार की अनेक रहस्य-पूर्ण बातें हैं, जो श्रद्धालु साधकों को ही ज्ञात हो पाती हैं। आज माई के स्थान में **'दस महा-विद्या'** के साथ ही **'श्री काल-भैरव, श्री सूर्य-नारायण, श्री गणेश, श्री मधुमती माई, श्री मनसा माई, श्री नव-ग्रह, श्री बजरङ्ग बली, श्री राधा-कृष्ण'** भी प्रतिष्ठित हैं एवं **श्री विश्व-रूपिणी दुर्गा, विश्व-रूप श्रीकृष्ण, अष्ट-लक्ष्मी** भी प्रदर्शित हैं।

माई की देन—'रज-रप्पा'

'राज-रप्पा' आकर कोई यह न समझे कि यह क्षुद्र मनुष्य की कृति है। सच यही है कि सारे स्थान की योजना, रेखाङ्कन एवं संरचना—सभी **'माई की देन'** है। इसे कोई किसी व्यक्ति की कृति समझने की भूल न कर बैठे। इस स्थान की महत्ता इसी से प्रमाणित है कि इस क्षेत्र के अन्य धर्मावलम्बी मुसलमान आदि भी आकर बलि चढ़ाते हैं। **'राज-रप्पा'** आकर सभी सम्प्रदायों के भक्तों एवं साधकों का विश्वास प्रगाढ़ हो—इसी आशा और विश्वास के साथ मैं इस लेख को यहीं समाप्त करता हूँ।

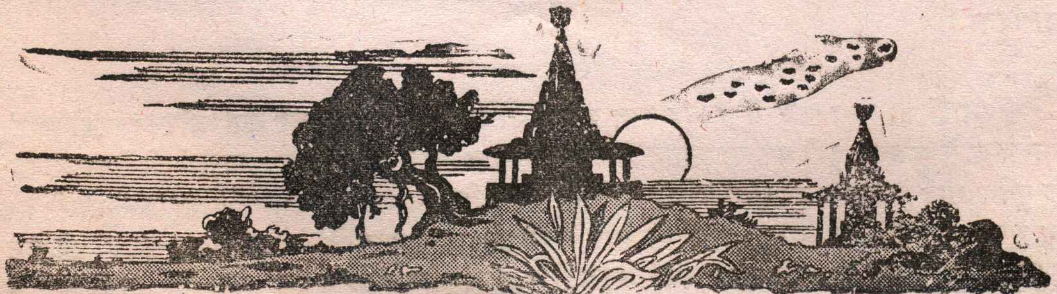

दश महा-विद्याओं की उत्पत्ति

श्री राजेन्द्रलाल दास, 'विशारद'
सुपौल, सहरसा (बिहार)

'सत्य-युग' में, 'दक्ष-यज्ञ' में भगवती के शरीर त्याग करके, मेनका गर्भ से जन्म लेने के बाद, जब विश्वामित्र सब देवताओं की उपासना करने पर भी 'ब्राह्मणत्व' प्राप्त नहीं कर सके, तो दूसरी वार महा-देव को तपस्या द्वारा बाध्य किया। महा - देव ने उनसे कहा कि **'तुम भगवती के एकाक्षर मन्त्र का नियमानुसार 'जप' करो, तभी तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा।'** तदनुसार विश्वामित्र ने आद्या-शक्ति **'काली'** के एकाक्षरी मन्त्र का यथा-विधि 'जप' किया। भगवती ने अवन्ती-नगर में 'काली'-स्वरूप में साक्षात् प्रकट होकर, विश्वामित्र को अभिलषित 'ब्राह्मणत्व' प्रदान किया था एवं शुम्भ और निशुम्भ-बध के समय भी **'काली-मूर्त्ति'** धारण की थी।

सत्य-युग में, एक समय विष्णु ने नील पर्वत पर आकर, पर्वत का उल्लंघन कर जाने की चेष्टा की। उस समय सिद्ध-गणों ने विष्णु से कहा कि—**हे विष्णो, इस पर्वत के स्थान-स्थान में भगवती की असंख्य मूर्त्तियाँ हैं, अतएव आप उन्हें उल्लङ्घन करके न जाएँ, किन्तु विष्णु ने उन लोगों के निषेध को नहीं सुना।** उल्लङ्घन करते ही गरुड़ के साथ वे स्तम्भित हो गए और सहस्र वर्ष तक स्तम्भित रहे। देवी ने क्रोधित भयङ्करी **'तारा' - मूर्त्ति** ग्रहण कर विष्णु को भारत-वर्ष से दक्षिण लवण-समुद्र में फेंक दिया। बाद में नारद की उपासना से, भगवान् त्रि-लोचन ने अनुग्रह-पूर्वक लवण-समुद्र से विष्णु का उद्धार किया। उसी समय से **'तारा'-मूर्त्ति** की सृष्टि हुई।

एक समय भगवती ने मन-ही-मन सोचा कि महा-देव मुझे 'कृष्ण'-वर्णा जान कर, **'काली'** कह कर केवल विद्रूप करते हैं। अतएव मैं उत्कृष्ट रूपवती होऊँगी। मन में यह सोचकर वे अन्तर्हित हो गईं। अनन्तर नारद ने वहाँ आकर, महा-देव को प्रणाम करके अनेक प्रकार के वार्तालाप के बाद पूछा—**'देव, माता भगवती कहाँ हैं ?'** महा - देव ने कहा—**'देवी मुझे छोड़ कर कहाँ गई हैं, मुझे पता नहीं।'** नारद ने सोचा, इसी समय दोनों में झगड़ा लगाने की सुविधा है। देखें, क्या होता है ? अनन्तर नारद ने ध्यान करके देखा कि भगवती सुमेरु पर्वत के ऊपर बैठी हुई हैं।

नारद वहीं जाकर बोले—**'माँ ! तुम यहाँ क्या कर रही हो ?** महा-देव ने किसी दूसरी भार्या को ग्रहण करने का निश्चय किया है।' यह सुनकर भगवती ने क्रोध से लाल वर्ण होकर, त्रि-लोक में सबसे मनोहर सुन्दर रूप धारण किया और तत्क्षण महा-देव के निकट आकर क्रोध-पूर्वक कहा—**हे कृतघ्न महा-देव, आपने अपनी प्रतिज्ञा को छोड़कर विवाह** किया है ?' **इस पर महा-देव ने हास्य-पूर्वक कहा—'देवि ! मैं प्रतिज्ञा-भ्रष्ट या कृतघ्न नहीं हूँ।** मेरे शरीर में तुम्हारी ही छाया है, **उसे देखकर तुम क्यों क्रोधित हो रही हो ?'** तब भगवती शान्त हुईं।

महा-देव ने कहा—'**भगवति ! चूँकि तुम्हारे समान स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में सुन्दर कोई नहीं है और तुम 'त्रिपुर-सुन्दरी' तथा सदा षोडश-वर्षीया के समान हो, अतः 'षोडशी' और 'राज-राजेश्वरी' आदि के नाम से तुम विख्यात होगी।**

पूर्व समय में ब्रह्मा ने सृष्टि के निमित्त अत्यन्त घोर तपस्या की। उस तपस्या से भगवती सर्व-शक्ति-मयी सन्तुष्ट होकर, चैत्र मास की नवमी तिथि को उत्पन्न हो **'भुवनेश्वरी'** नाम से लोक में विख्यात हुई।

दुःख विनाश-कारिणी, यम-भय-नाशिनी एवं भैरव की भार्या होने के कारण भैरवी हुई।

'सत्य-युग' में एक समय भगवती मन्दाकिनी के जल में स्नान करके जब निवृत्त हुई, तो उनके साथ की **डाकिनी** और **वर्णिनी** नामक सह-चरियाँ बार-बार कहने लगीं कि—**'हम लोगों को अत्यन्त भूख लगी है, खाने की वस्तु दो।'** भगवती ने कहा कि **'थोड़ा ठहरो, घर जाकर खाने को प्रचुर खाद्य वस्तु दूँगी।'** इस तरह कहने पर भी वे दोनों न मानीं और कहने लगीं कि—**'हम लोग भूख नहीं सह सकतीं। हमें तृप्त करो, खाने को दो।'** यह सुन कर भगवती ने कहा—**'लो, देती हूँ।'** यह कहकर नख के अगले भाग से अपना ही मस्तक काट दिया और कटा हुआ मस्तक बाएँ हाथ में आ गिरा। कण्ठ से शोणित की तीन धाराएँ बहने लगीं। दो तो दोनों सखियों के मुखों में और एक अपने मुख में गिरने लगी। इस तरह दोनों सखियों के मुखों को परितृप्त किया। इसलिए **छिन्न-मस्ता** नाम से अभिहित हुई।

एक समय 'कैलाश' पर्वत पर महा-देव के अङ्क में स्थित भगवती ने कहा—**देव, मुझे अत्यन्त भूख लगी है, मुझे समुचित खाद्य वस्तु दें।** महादेव ने कहा—**प्रिये, थोड़ी देर में खाने की वस्तु देता हूँ।** यह सुनकर फिर भगवती बोलीं—**मुझसे अब ठहरा नहीं जाता।** इस तरह बार-बार खाने के लिए माँगने पर भी जब महा-देव ने कहा कि **'थोड़ा ठहरो'** तो भगवती ने कहा कि **'अब मुझसे ठहरा नहीं जाता'** और इतना कहकर महा-देव को ही अपने मुँह में डाल उदरस्थ कर लिया। देवी की देह से **धूम-राशि** निकलने लगी। उसके बाद महा-देव माया-पूर्वक उनके शरीर से ही कहने लगे—**देवि, इस संसार में मैं भिन्न पुरुष और तुम भिन्न स्त्री नहीं हो, इसलिए जब तुमने मुझे भक्षण कर लिया, तो तुम सधवा का चिह्न शङ्ख (चूड़ी) और सिन्दूर आदि का परित्याग कर दो। आज से जिस तरह काली, तारा प्रभृति महा-विद्याएँ सिद्ध-विद्याएँ कहकर विख्यात हैं, उन्हीं (महा-विद्याओं) में तुम धूमावती नाम से प्रसिद्ध होगी।** उसी समय से **धूमावती** की ख्याति हुई।

एक समय 'सत्य-युग' में त्रिलोक-विनाशकारी झंझावात को प्रबल वेग से प्रवाहित देखकर, जगत् के पिता विष्णु भगवती की तपस्या में प्रवृत्त हुए। भगवती सन्तुष्ट होकर, सौराष्ट्र देश में मङ्गलवार चतुर्दशी तिथि को वीर-रात्रि में, हरिद्रा सरोवर में स्नान-पूर्वक, आधी रात के समय त्रैलोक्य-स्तम्भन-कारिणी तेजो-राशि ब्रह्मास्त्र-क्रिया-रूप में उत्पन्न हुईं। उक्त तेज विष्णु के तेज से मिल गया। उसी दिन से **बगलामुखी महा-विद्या** नाम से प्रसिद्ध और पूजित हुई।

पूर्व समय में, एक बार नाना वृक्षों से शोभित कदम्ब-कानन में, सर्व-लोक-हित-कामना से 'मतङ्ग' नाम के मुनि ने सौ सहस्र वर्ष तक भगवती की तपस्या की। तपस्या से सन्तुष्ट होकर भगवती सुन्दर नेत्र-विशिष्ट तेजो-राशि रूप में, नील - वर्ण रूप धारण कर आविर्भूत हुई। 'मतङ्ग' की उपास्या होने से, वे उस समय से **'मातङ्गी'** नाम से प्रसिद्ध हुई।

पूर्व समय में **क्षीरोदधि-मन्थन** में विष्णु-वक्ष-स्थल-स्थिता महा-लक्ष्मी, फाल्गुन के एकादशी-युक्त भृगु-वार को महा-मातङ्गिनी के अंश से सर्व-सौभाग्य-दायिनी **कमलात्मिका के रूप में** उत्पन्न हुई थीं।

दश-महा-विद्या रहस्य

✱ कौलाचार्य पं० नथमल दाधीच

श्रीभुवनेश्वरी महा-शक्ति-पीठ, सीकर (राजस्थान)

'शक्ति-उपासना' आधुनिक ही नहीं, अपितु अति प्राचीन है। आर्यों की परम ज्ञानोन्नति के समय जो महर्षि महा-शक्ति के अस्तित्व को हृदयङ्गम करने में सक्षम हुए थे, उन्हीं के द्वारा प्रतिपादित यह **'अमोघ उपासना'** है। **'महा-शक्ति'** नित्य और जन्म-मृत्यु - रहित तथा समस्त विभागवाली है एवं जगत् का आदि कारण है, उसी से यह संसार विस्तारित है। **अनादि मूल शक्ति** से ही यह निखिल ब्रह्माण्ड सृष्ट हो रहा है। समग्र जगत् में एक **अचिन्त्य, अनिर्वचनीय, अज्ञात, अज्ञेय** एवं **मूल महा-शक्ति** विराजमान है—इस तथ्य को आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं।

ज्ञान और भक्ति के सरल मार्ग में गमन करनेवाले आचार्यों ने भी अन्ततः **महा - शक्ति** का दर्शन प्राप्त किया था। उन्होंने प्रमाणित किया है कि **महा-शक्ति** के अभाव से देव - राज **'इन्द्र'** ब्रह्माण्ड को चूर्ण कर सकते हैं; **'अग्नि'** विश्व को दग्ध कर सकते हैं; **'पवन'** विश्व को चलायमान कर सकते हैं। इनकी यह **शक्ति** इनकी निजी शक्ति नहीं है। **महा-शक्ति** द्वारा ही विश्व ने शक्तियों को प्राप्त किया है।

वेदान्त-वादियों ने महा-शक्ति की ज्ञान-योग से विवेचना करके, ऊपरी भाग में एक अपूर्व तत्त्व—चिन्मय पदार्थ को द्रष्टा-रूप से स्थापित करके और उसके निम्न स्तर पर दृश्य-रूप से इस अनन्त शक्ति के केन्द्रीभूत पदार्थ की रक्षा करते हुए विश्व-लीला की बड़ी सुन्दर मीमांसा की है।

सांख्यकार चिन्मय पदार्थ को **'पुरुष'** एवं अधः-स्थित को **'प्रकृति'** कहते हैं। इस प्रकार **सनातन महा-शक्ति**—पुरुष और **शक्ति** दोनों की समष्टि होकर भक्तों के रक्षार्थ **'मा भैः, मा भैः'** का उच्च स्वर से निनाद करती हुई धावमान हो रही है।

जड़-चेतन, चर-अचर—सभी इस अनन्त सत्ता के अन्तर्गत हैं। निर्गुण अवस्था में यह **तुरीया** और सगुण अवस्था में **सत्त्व - रज** तथा **तमो - मय** है। इन गुणों से सृष्टचादि कार्य होते हैं। श्रीचण्डी (श्रीदुर्गा-सप्तशती) में इस **महा-शक्ति-तत्त्व** का विशद रूप से वर्णन है। **महा-शक्ति** जगन्मयी है, इसलिए देवता, चन्द्र-सूर्य ग्रह-उपग्रह, अग्नि-वायु, जल-स्थल, गङ्गा-गोदावरी, आम्र-वट—सकल घट में **महा-शक्ति** की ही आराधना करते हैं।

पर्वत-राज 'हिमालय' के प्रश्न के उत्तर में भगवती कहती हैं कि—**'हे भूधर ! सूक्ष्म रूप की तरह स्थूल रूप में भी समस्त विश्व को परिव्याप्त करके मैं स्थित हूँ। मेरा जो परम सूक्ष्म, गुणातीत, निराकार, सर्व-व्यापी, निरंश, सकल जगत् का आधार, निरालम्ब, निर्विकल्प, नित्य चैतन्य-मय, ज्योति - स्वरूप है, उसी का अवलम्बन 'मुमुक्षु' - गण 'देह - बन्ध' से विमुक्त होने के लिए करते हैं। हे राजन् ! 'माया'-मुग्ध व्यक्ति, मेरे इस अद्वैत रूप को नहीं जान पाते, किन्तु वे लोग 'भक्ति' - पूर्वक स्थूल रूप की आराधना करते हैं, जिससे बाद में वे भी मेरे उक्त परम रूप से अवगत होकर, 'माया'-जाल से उत्तीर्ण होते हैं। मेरी 'देवी'-मूर्ति की आराधना करने से शीघ्र ही 'मुक्ति'-लाभ किया जा सकता है।'**

'देवी'-मूर्ति के उपासक प्रधानतः **दश महा - विद्याओं** के साधक होते हैं। **दश महा - विद्याएँ** 'आशु'-मुक्ति देनेवाली हैं। विशेष कार्य-हेतु, ये स्वेच्छा से आविर्भूता, स्वयं उत्पन्ना हैं। **दश महा-विद्याएँ** किस समय कैसे आविर्भूता हुईं, इसका उपाख्यान यहाँ उद्धृत करते हैं।

दक्ष प्रजापति की कन्या **सती** ने स्वेच्छा से **शिव** को पति-रूप से वरण किया था। वे **नारद** से पिता द्वारा आयोजित महान् समारोह और यज्ञानुष्ठान की सूचना पाकर आनन्दित हो रही थीं, किन्तु पिता ने इस यज्ञ में उन्हें निमन्त्रण नहीं दिया था क्योंकि वे **शिव** की उपेक्षा करते थे। निमन्त्रण न भेजने का कारण जानने हेतु **सती** ने मायके जाने हेतु **महा-देव** से अनुमति माँगी, किन्तु उन्होंने स्वीकृति नहीं दी। देवी ने अनेक प्रकार से बारम्बार अनुरोध किया, किन्तु **शिव** ने हँसकर उनके अनुरोध को अमान्य करते हुए स्पष्ट किया कि **'हे सती ! हमें मान-अपमान की परवा नहीं है। हम आपके सहित 'कैलास' में परम सुख से 'काल'-यापन करते हैं। हमको 'यज्ञ'-भोग का कोई प्रयोजन नहीं है। वहाँ जाने से आपको कटु वचन ही सुनना होगा और आप अभिमान-वश अपमान को न सह कर 'देह'-त्याग कर दोगी। अतः चाहे जितना आप अनुरोध करें, मैं अनुमति नहीं दूँगा।'**

शिव की उक्ति सुनकर क्रोधावेश से **सती** के अङ्ग कम्पित होने लगे। भान होने लगा कि उनकी कोपाग्नि से जगत् भस्म हो जायगा। **सती** की इस भीषण मूर्ति को देखकर, **शङ्कर** दसों दिशाओं की ओर देखने लगे। हर दिशा में उन्हें एक-एक मूर्ति देवी की दिखाई पड़ी। दश दिशाओं की यही दस मूर्तियाँ **दश महा-विद्या** नाम से प्रसिद्ध हुईं। इनमें से किसी भी एक की उपासना से साधक 'आशु'-सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

ऊपर के उपाख्यान का विश्लेषण करने पर वास्तविक रहस्य अवगत होता है। **प्रजापति दक्ष** अर्थात् **कर्म - शक्ति**। वह काल - वञ्चना की चेष्टा करती है। **'दक्ष'** ने अपनी **कर्म - शक्ति** के **दर्प से मत्त** होकर सोचा कि **महा-काल को निमन्त्रण** भेजने की क्या आवश्यकता ? **विष्णु** भगवान् हैं ही, उन्हीं की भक्ति करना जीव का परम लक्ष्य होना चाहिए। **महा-काल की आराधना** की क्या आवश्यकता ? **कर्म-शक्ति** द्वारा काल को भी जय कर सकते हैं। **'काल'** को अग्राह्य कर सकते हैं। **'काल', 'कर्म'** के प्रणत होगा नहीं; **'कर्म'** को **'काल'** ग्रहण करेगा नहीं। तब क्रुद्ध होकर, **'कर्म'** काल को और भी हीन करने का प्रयास करेगा। **'शक्ति'**-लाभ के लिए **'यज्ञ'** किया जाता है। अतः दक्ष ने **त्रिलोक-व्यापी यज्ञ** का अनुष्ठान किया। 'काल' की शक्ति **सती** या **'प्रकृति'**, इस समय 'कर्म'-शक्ति के परिचालन से **अपरा-शक्ति** को बाध्य होना होगा। आप ईश्वर का आवाहन करें या नहीं; ईश्वर को समझें या नहीं; ईश्वर को मानें या नहीं; **'कर्म'** करने पर **'शक्ति'** को तो आना ही होगा।

'सती'–दक्ष की कनिष्ठा कन्या आदर से पली है। इससे सकल **आसक्ति-मय अवस्था** के भाव प्रकाशित होते हैं। इसी से उसे 'कनिष्ठा' कहा है, किन्तु अविद्या-रूपिणी **अपरा प्रकृति** के ऊपर कोई भी प्रबला शक्ति नहीं है ? **'अविद्या'** ही **'महा-विद्या'** है। **महा-मोहित 'कर्म'** **(दक्ष)** उसको समझ नहीं पाता। उक्त 'कनिष्ठा कन्या' यदि 'काल' की गोद में न होकर 'कर्म' - विराजिता होती, तो 'दक्ष' को इतना क्रोध न होता। 'काल' की गोद में, वह श्मशान-वासिनी है, योगिनी है, सह-चारिणी है, मुक्त-केशी है ! ऐश्वर्य-मद से गर्वित, 'कर्म'-मति 'दक्ष' ऐसी 'कन्या' को कैसे देख सकता है ?

'शक्ति' - साधक के आकर्षण की अवहेलना **'शक्ति'** नहीं करती। **'शक्ति'** को पुकारने पर, **'शक्ति'** अवश्य धावमान होगी। **'शक्ति'** रह भी कैसे सकती है ? उसको तो जाना ही होगा। काल-हीन

'शक्ति' के गमन से कुफल होकर, 'दक्ष' का 'यज्ञ' विध्वंस भले हो जाए, किन्तु जो साधना 'दक्ष' ने आरम्भ कर रखी है, उसके आकर्षण से उसको जाना ही होगा। 'कर्म' की शक्ति के 'साधना' - फल से, **महेश्वर के सङ्ग से प्रकृति का विच्छेद** सम्भव हो गया! **महा - काल** तो **'प्रकृति'** का परित्याग करना चाहता नहीं, अतः **'शक्ति'** इस समय, 'कर्म'-पक्षानुगामिनी होकर, **काल** को भयभीत कर अपना स्वरूप प्रकाश करती है। यही दसों दिशाओं में **दश महा-विद्या** है।

प्रथम महा विद्या, 'महा-काल' को 'शक्ति' देनेवाली **महा - काली** है एवं द्वितीय महा - विद्या अनन्त देश की प्रकृति-रूपिणी—देश-शक्ति **'तारा'** है। **'काली'** और **'तारा'** का तत्त्व, प्रायः एक समान है। **'देश'** और **'काल'** में जो विभिन्नता है, वही **'काली'** और **'तारा'** में है। **'काली'** और **'तारा'** दोनों ही **'काल'** और **'देश-शक्ति'** से संहार-कारिणी हैं। श्वेत--पीतादि सकल वर्ण जैसे कृष्ण वर्ण में विलीन होते हैं, इसी प्रकार वह निर्गुण विश्व - हितैषिणी 'कृष्ण' - वर्णा है और देश-शक्ति 'नील' - वर्णा है। ये नित्य अव्यय कल्याण-कारिणी हैं। इनके ललाट में अमृत-तत्त्व-युक्त **चन्द्र-कला** है। चन्द्र, सूर्य और अग्नि द्वारा चराचर जगत् सतत दृश्यमान हो रहा है। अतः ये **त्रि - नयना** हैं। **'काल'** और **'देश'** अनन्त हैं। इसी प्रकार **'काली'** और **'तारा'** भी अनन्त शून्य हैं अर्थात् अलङ्घनीया हैं।

देश-शक्ति **'तारा'** से अर्थात् आकाश (महाकाश) से सर्व-शक्ति-सम्पन्ना स्थिर-यौवना **'षोडशी'** की उत्पत्ति हुई। 'शक्ति' का बल सदैव अक्षुण्ण रहता है। यदि अक्षुण्ण नहीं रहेगा, तो उसे 'शक्ति' ही नहीं कह सकते। इसी कारण **'षोडशी'** शक्ति चिर-यौवना है। **'षोडशी'** सर्व-शक्ति-श्रेष्ठ है। अतः वह **राज-राजेश्वरी** है, जिसका पञ्च-देव ध्यान करते हैं क्योंकि इसी शक्ति से उनको 'शक्ति'-लाभ होता है। काली-तारा महा-विद्या से इस तृतीय महा-विद्या को ऋषियों ने त्रिगुणानुसार समष्टि - अर्थ में त्रिभुवन की ईश्वरी दिखाया है।

चतुर्थ विद्या का नाम **'भुवनेश्वरी'** है। शक्ति के दो रूप हैं--एक कोमल - कान्त और दूसरा प्रचण्ड रूप। **'भुवनेश्वरी'** का मनोहर रूप है एवं पञ्चम विद्या **'भैरवी'** प्रचण्ड रूप। **'भैरवी'** चण्डी-शक्ति अष्ट-विध प्रचण्डा, तन्त्रोक्त अष्ट-नायिका है।

आगे **'छिन्न-मस्ता'** के रूप में षष्ठ विद्या कही गई है। भगवती सकल मूर्तियों में ही विश्व-पालिका शक्ति है। वह जैसे सृष्टि-कारिणी है, वैसे ही स्थिति-कारिणी है। **'छिन्न-मस्ता'** को हम **अन्न-पूर्णा** के त्रिधा शक्ति-विभाग में देखते हैं। जिस प्रकार **अन्न-पूर्णा** भोक्तृ, भोग्य, भोग - रूप से जगत् का अन्न-स्वरूप ही रही है, वही **'छिन्न-मस्ता'** की **त्रिधा रक्त-धारा** है। निज देह की त्रिधा रक्त - धारा का पान करके वह **अन्न-पूर्णा** को परिष्कृत रूप में दिखा रही है। कभी जगत्-भोक्तृ-रूप से निज जगत्-देह से ही भोग्य अन्न का संग्रह करती है, कभी उस भोग्य अन्न को आप ही भोग करके परिपुष्ट और पालित होती है। **१ भोक्ता, भोग्य** और **३ भोग**—ये तीनों ही पृथक् शक्ति-रूप से देखे जाते हैं। भोक्ता रहता है, भोग्य भी रहता है, किन्तु भोग न होने पर पुष्टि-साधना कैसे सम्भव है? भोग न होने पर भोग्य कुछ भी नहीं रहेगा।

जब केन्द्रस्थ **'विष्णु'-यज्ञ** को आहुति प्राप्त न होगी, तब **'सौम्य'** प्राण के अभाव से 'रुद्र' प्राण कुपित हो देह क्षीण होकर जीवन का अन्त होगा। इसी प्रकार जब आधिदैविक अव्यवस्था होगी, तब प्रलय-हेतु प्रलय-कारिणी सप्तम विद्या **धूमावती** को देखते हैं। यह घोर प्रलय-मूर्ति है। प्रलय-काल में

जब जगत् के भोग शेष होंगे, तब जरा-जीर्णावस्था में भगवती **'धूमावती'** वृद्धा-वेश में 'काक - ध्वज' लगे हुए यमराज के प्रलय-रथ में आरूढ़ होकर क्षुधातुर-विस्तृत - वदना, सकल विश्व को छाण (कुला) में संग्रह करके, निज उदर पूर्ण करती है।

अष्टम विद्या रक्त-वर्णा रजो - रूपिणी **'बगला'**-मूर्ति से भगवती के वेद - विरोधी घोर असुर-गणों का विनाश होता है। उस असुर - विनाश से जिस ज्ञान का विकास होता है, वही नवम विद्या **मातङ्गी** भगवती ज्ञान-स्वरूपा है। **मातङ्गी** विश्व-रूपिणी अज्ञान-रूपा अविद्या-वासिनी है, कृष्णाङ्गी तमो-रूपिणी शक्ति है। समस्त शक्तियों को धारण कर अष्टैश्वर्य-शालिनी **भगवती 'कमला'**-रूप से दशम विद्या जगत् में व्याप्त हो रही है।

सारांश यह है कि प्रकृति की दश-विधा शक्तियाँ ही **दश-महा-विद्याएँ** हैं। इसलिए महा-शक्ति की **दस महा-विद्या रूप** में उपासना 'हिन्दू'-समाज में प्रचलित है। स्व-कल्याण-इच्छुक व्यक्तियों को चाहिए कि सद्-गुरु से किसी **महा-विद्या का मन्त्र** ग्रहण करके **मनसा - वाचा - कर्मणा** उसकी उपासना करे। विधि-विधान-पूर्वक उस मन्त्र का **'पुरश्चरण'** करे—कलि-युग में चतुर्गुणा। विघ्न-निवारणार्थ **'वटुक'** आदि का 'मन्त्र'-जप करे। भक्ति - परायण होकर पूजादि सकल तृप्ति-युक्त मन्त्र से **'पुरश्चरण'** करे।

जब तक स्थूल रूप में चित्त निपुण नहीं होता है, तब तक सूक्ष्म रूप में अन्तः-करण गमन नहीं करता। अतः प्रथम स्थूल रूप में अभ्यास करे। **'क्रिया'-योग** और **'ध्यान' - योग** अथवा तन्त्रोक्त **'महा-राजाधिराज'-योग** से स्थूल रूप की विधि-विधान से अर्चना करनी होती है। इस प्रकार शास्त्र-विधि-सम्मत कर्म करके, अन्तः-करण निर्मल होने पर **देवी का सच्चिदानन्द-स्वरूप** नित्य - विग्रह मन में प्रकट होगा अर्थात् जो परमार्थ भाव है, वह साक्षात् प्रत्यक्ष होगा। इसी को साधक की **'जीवन-मुक्त अवस्था'** कहते हैं। **'महा - विद्या'** की साधना से साधक शीघ्र ही **'सिद्धि' - लाभ** करता है, कारण शक्ति हमारे सर्वाङ्ग में स्थित है। इसीलिए महा-शक्ति की **दस महा-विद्या-रूप से साधना** करने की प्रथा प्रचलित है।

दस महा-विद्या वस्तुतः **महा-शक्ति का क्रम-विकास** है। यद्यपि इस प्रबन्ध में पुराणों के रूपकों का तात्पर्य दिया गया है, तथापि केवल आध्यात्मिक दृष्टि ही इन कथा - प्रसङ्गों का लक्ष्य नहीं है। 'आधि-दैविक' और 'आधि-भौतिक' सभी दृष्टि-कोणों का अपना-अपना महत्त्व है। उदाहरण-स्वरूप जैसे कथा-प्रसङ्ग का रूपक-रूप में आध्यात्मिक विश्लेषण सत्य है, वैसे ही भगवती के अवतार आदि होकर सूक्ष्म जगत् में भी 'आधि-दैविक' कार्य सम्पन्न होता है, यह भी सत्य है। इसी प्रकार समय-समय पर वह पराम्बा, इस धरा-धाम पर अवतीर्ण होकर, भक्त-जनों के सकल दुःखों को दूर कर, सर्वतोभाव से उनकी रक्षा करती है, यह 'आधि-भौतिक' तात्पर्य भी सत्य है।

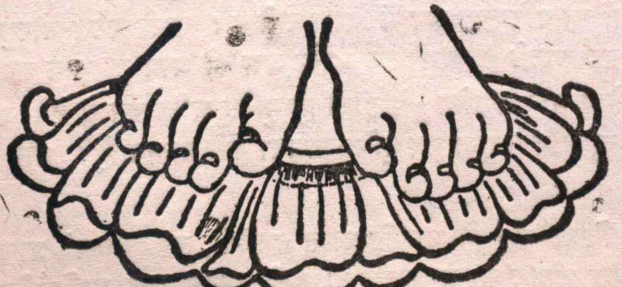

दश-महा-विद्या जयन्ती

१ श्री भुवनेश्वरी जयन्ती—भाद्र शुक्ला द्वादशी, रविवार को **श्री भुवनेश्वरी भगवती का जयन्ती महोत्सव** 'व्रत'-पूजा, जागरण, कथा-पाठ-भजनादि, चक्रार्चन से करना चाहिए।

२ श्री काली जयन्ती—भाद्र कृष्णा अष्टमी की आधी-रात में, **आद्या काली की जयन्ती** मनावें। उस दिन कालिका की 'व्रत'-पूजा करें, स्तोत्रादि पढ़ें और गुण-गायन, भजन, जागरण, चक्रार्चन करते हुए महोत्सव करना चाहिए।

३ श्री ललिता जयन्ती—माघ पूर्णिमा को प्रदोष समय में ललिता भगवती श्री त्रिपुर-सुन्दरी प्रगट हुईं। अतः **श्रीललिता जयन्ती-महोत्सव** उक्त दिन, प्रदोष-काल में, व्रत-पूजा स्तुति पाठ, सहस्र-नाम, सहस्रार्चन, ललितोपाख्यान की कथादि कहते हुए मनावें।

४ श्री तारा जयन्ती—चैत्र सुदी नवमी, शनिवार को मध्य रात्रि में तारा भगवती का प्रागटच हुआ। अतः उस दिन **तारिणी जगदम्बा का जयन्ती महोत्सव** तारा-सपर्या करते हुए शक्ति-पूजा, कुमारी-पूजा, पाठ-भजन, गुण-कीर्तनादि से मनावें।

५ श्री छिन्न-मस्ता जयन्ती—वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को अर्ध-रात्रि में छिन्न-मस्ता जगदम्बिका का प्रादुर्भाव हुआ। अतः उस दिन **भगवती छिन्न-मस्ता जयन्ती** 'व्रत'-पूजा, स्तोत्र-पाठादि, भजन-कीर्तन और जागरण से एवं सुवासिनी-पूजादि करते हुए मनावें।

६ श्री मातङ्गी जयन्ती—वैशाख सुदी तृतीया, गुरुवार को मातङ्गिनी भगवती प्रगट हुईं। अतः उस दिन **भगवती मातङ्गिनी जयन्ती** 'व्रत'-पूजा, स्तोत्र - पाठ, कथा - कीर्तनादि करते हुए और सहस्रार्चन कुलार्चन-विशेष से मनावें।

७ श्री बगलामुखी जयन्ती—वैशाख मास की शुक्ला चतुर्थी शनिबार को **श्री बगलामुखी** (पीताम्बरा) **भगवती का जयन्ती महोत्सव** उनके विशेष व्रत, पूजा (पीतोपचार समेत), सहस्रार्चन, शक्ति-सपर्या, कुमारी-पूजादि से मनावें।

८ श्री धूमावती जयन्ती—ज्येष्ठ महीने की शुक्ला अष्टमी बुधवार को धूमावती का प्रादुर्भाव हुआ। उस दिन **भगवती श्री धूमावती की जयन्ती** विशेष सपर्या, स्तोत्र-पाठ, हवन, सहस्रार्चन, कथा-कीर्तनादि करते हुए मनावें।

९ श्री कमला जयन्ती—कार्तिक अमावास्या चन्द्र-वार को कमला महा-विद्या का प्रादुर्भाव हुआ। अतः उस दिन **भगवती श्रीकमला जयन्ती** विशेष पूजा, कमलों से सहस्रार्चन, सुवासिनी पूजा, स्तोत्र-पाठ, जप-हवनादि से मनावें।

१० श्री त्रिपुरा-भैरवी जयन्ती—मार्ग-शीर्ष (अगहन) पूर्णिमा, अर्ध-निशा में त्रिपुरा भैरवी महा-विद्या का प्रादुर्भाव हुआ। अतः उस दिन **श्री भैरवी जयन्ती** विशेष सपर्या, व्रत, पाठ, जप, हवनादि और शक्ति-चक्रार्चन, सुवासिनी-पूजा, कथ-ाकीर्तनादि से मनावें।

विशेष (१) उक्त महा-विद्या-महोत्सव सभी लोगों के लिए सम्माननीय हैं। उक्त उत्सवों को लक्ष्य कर अर्थात् **दश-महा-विद्याओं के जयन्ती महोत्सवों के दिन**, जो साधक जिस स्व-अभीष्ट देवता का पूजन करेगा, उसको वही देवता कल्याणकारी होता है, इसमें सन्देह नहीं।

(२) पर्व-काल, ग्रहणादि में जैसे देव-साधनादि मन्त्र-जप द्वारा किए जाते हैं, वैसे ही इन पर्वों में करना सिद्ध-प्रद होता है।

दश महा-विद्या

की

आराधना

दश-महा-विद्या-रूपी सृष्टि-विद्या को ऋषियों ने तीन भागों में विभक्त किया है। **महा-काली** तमो-गुण-प्रधाना कृष्णा हैं, यही **प्रलय-काल** हैं। **महा-लक्ष्मी** रजो-गुण-प्रधाना रक्त-वर्णा हैं, यही **सृष्टि-काल** हैं और **महा - सरस्वती** सत्त्व-गुण-प्रधाना हैं, यही **मुक्ति - काल** हैं। एक ही 'अज' पुरुष की अजा नाम से प्रसिद्धा महा - शक्ति, तीन रूपों में परिणत होकर सृष्टि, प्रलय और मुक्ति की अधिष्ठात्री हैं। **त्रि-रूपा शक्ति** का मूल निम्न-लिखित 'श्रुति' मन्त्र में है—

अजामेकां लोहित-शुक्ल-कृष्णां, बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते, जहात्येनां भुक्त-भोगामजोऽन्यः ॥ (श्वेता० ४/५)

दूसरे शब्दों में, उपर्युक्त **'अजा'**,——**त्रि-रूपा शक्ति** के विस्तार के रूप में **दश-महा-विद्या-रूपी सृष्टि-विद्या** का वर्णन हमारे शास्त्रों में हुआ है। इन दश-महा-विद्याओं में भी कोई **महा-विद्या** है, तो कोई **सिद्ध-विद्या**, कोई **श्रीविद्या**, तो कोई केवल **विद्या** है। कोई **महा-रात्रि** है, तो कोई **मोह-रात्रि**, कोई **काल-रात्रि**, तो कोई **दिव्य-रात्रि**, कोई **सिद्ध-रात्रि**, तो कोई **वीर-रात्रि**, कोई **दारुण-रात्रि**, तो कोई **क्रोध-रात्रि**। **अहः** पुरुष है और रात्रि स्त्री-**शक्ति**। प्रत्येक के **शिव** (अहः-पुरुष) भी अलग-अलग हैं। नीचे की तालिका देखें—

संख्या		शक्ति	नामान्तर	रात्रि	विद्या	शिव
१	०	महा-काली	आद्या, प्रथमा	महा-रात्रि	महा-विद्या	महा-काल
२	१	तारा	द्वितीया, तारिणी	क्रोध-रात्रि	महा-विद्या	अक्षोभ्य
३	२	षोडशी	महा-त्रिपुर-सुन्दरी	दिव्य-रात्रि	महा-विद्या	पञ्च-वक्त्र कामेश्वर
४	३	भुवनेश्वरी	राज-राजेश्वरी	सिद्ध-रात्रि	महा-विद्या	त्र्यम्बक महा-देव
५	४	छिन्न-मस्ता	छिन्ना	वीर-रात्रि	विद्या	कबन्ध, क्रोध-भैरव
६	५	भैरवी	त्रिपुर-भैरवी	काल-रात्रि	विद्या	दक्षिणामूर्ति भैरव
७	६	धूमावती	अलक्ष्मी, भूखी माँ	दारुण-रात्रि	विद्या	काल-भैरव
८	७	वल्गामुखी	बगलामुखी, पीता	वीर-रात्रि	सिद्ध-विद्या	महा-रुद्र, मृत्युञ्जय
९	८	मातङ्गी	सुमुखी	मोह-रात्रि	सिद्ध-विद्या	मतङ्ग
१०	९	कमला	लक्ष्मी	महा-रात्रि	सिद्ध-विद्या	सदा-शिव, नारायण

संक्षेप में समस्त देव-शक्तियों का अवतरण उपर्युक्त दश महा-शक्तियों के अंश से ही हुआ है। जितने भी **सगुणवादी**—देव-शक्ति के प्रति विश्वास रखनेवाले आस्तिक हैं, वे सभी **'शाक्त'**—शक्ति के उपासक हैं। 'कलि' में एक ही सुगम और सुलभ पथ—**'शक्ति-आराधना'** है। इसकी साधना की विधियाँ तन्त्र-शास्त्र में भरी पड़ी हैं। दक्ष 'गुरु' से उपदेश-लाभ कर, थोड़े ही श्रम में, कोई भी **भुक्ति-मुक्ति-लाभ** कर सकता है। इस मार्ग में **'ब्राह्मण'** और **'शूद्र'** का विचार नहीं है, सभी इसके अधिकारी हैं।

कुमुद प्रीता ट्रस्ट के न्यासी गण

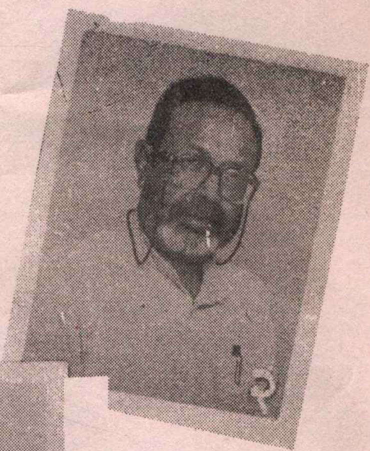

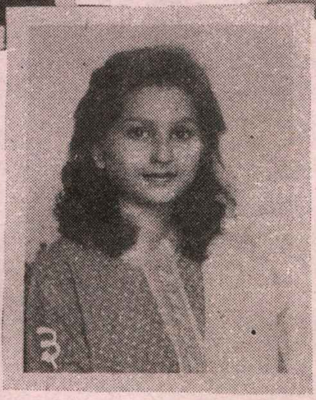

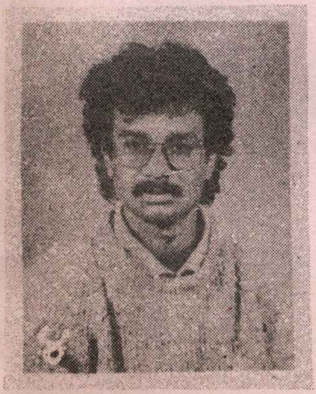

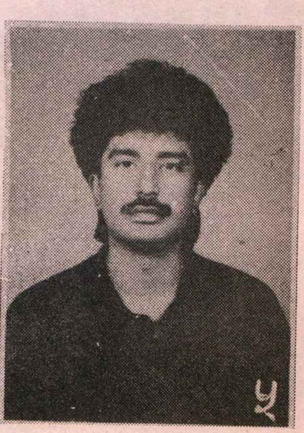

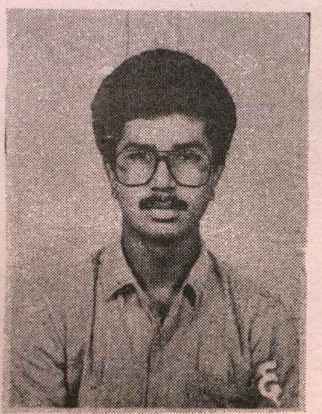

१ श्रीमती कुमुद शरण   २ श्रीविपिनबिहारी शरण   ३ सुश्री कुमारी नेहा कात्यायनी

४ श्रीशरद शरण   ५ श्री संजय शरण   ६ श्रीशेखर शरण

रजि० सं० ३२९८१/५७ रजि०सं० एल०डी० १६

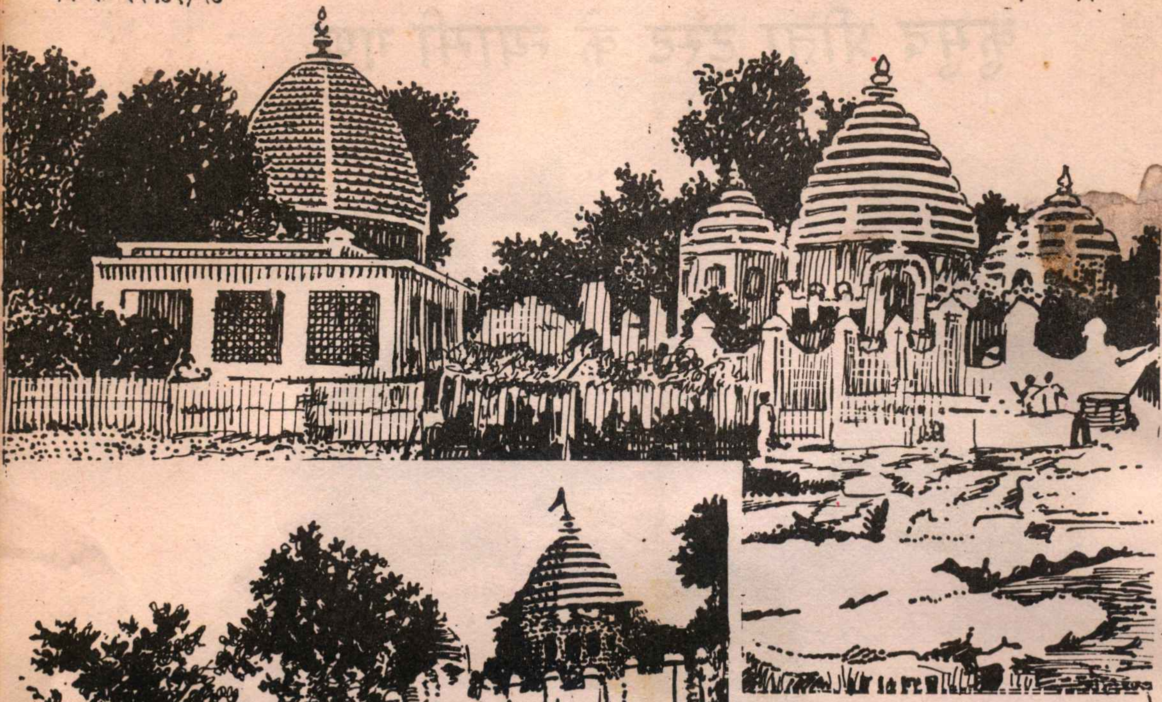

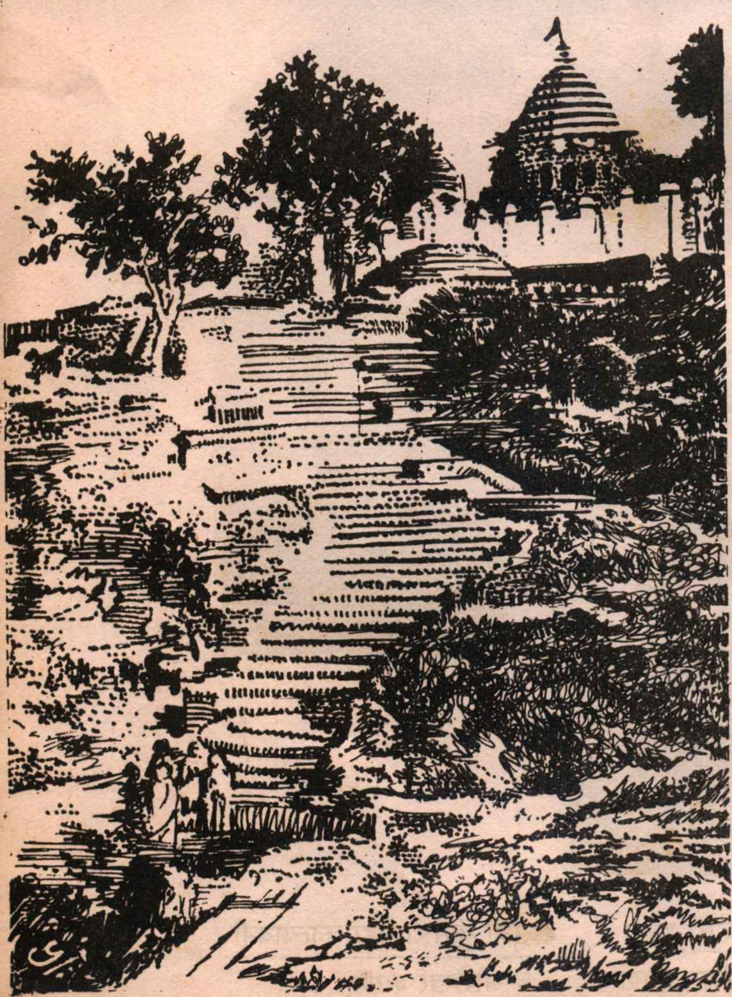

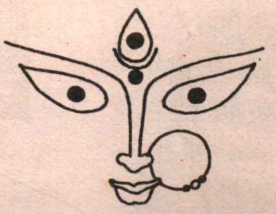

आदि
शक्ति-पीठ
'रज-रप्पा'
(हजारीबाग, बिहार)

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्रीक्रतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, प्रयाग-२११